समाजवाद-क्या है ?

लेखक—

प्रोफेसर जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, एम० ए०, बी० एल०

भू० पू० सम्पादक मासिक 'विश्वमित्र'।

हिन्दी-भवन

सलकिया

हवड़ा

प्रथम संस्करण]   जुलाई १९३९   [मूल्य १)

प्रकाशक—
सुखनन्दन सिंह, चौधरी
हिन्दी भवन, गलकिया
हवड़ा ।

मुद्रक—
विष्णुदत्त शुक्ल
शुक्ल प्रेस, ७१, बाबूलाल लेन,
कलकत्ता ।

प्रेमोपहार

विषय-सूची

पृष्ठ

१ वर्तमान समाज — १
२ समाजवाद—आदर्श — ११
३ समाजवाद—नैतिक भाव धारा — १६
४ मार्क्सवादका मूल सूत्र—डायलेक्टिक — २६
५ इतिहासकी वास्तव व्याख्या — ४३
६ श्रेणी-संग्राम — ४८
७ पूंजीवादी अर्थनीति — ५८
८ राजका स्वरूप — ७३
९ समाजवादी क्या चाहते हैं ? — ११०
१० साम्यवाद और गांधीवाद — १२३
११ समाजवादी रूसमें नूतन युग — १४३

———*———

दो शब्द

पश्चिमसे जो भावधाराएं हमारे देशमें फैली हैं और फल रही हैं, उनमें मार्क्सवाद या समाजवाद ही एक ऐसा मतवाद है, जिसने हमारे विचार-जगतमें विप्लवकी सृष्टि कर दी है। इस विप्लवका आभास आज हमें जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें--समाज-नीति, राष्ट्रनीति एवं धर्मनीतिमें—स्पष्ट रूपसे परिलक्षित हो रहा है। समाजवाद या साम्यवाद अच्छा है या बुरा, इस मार्ग द्वारा हमारा कल्याण-साधन होगा या नहीं—इस प्रश्नको लेकर चाहे कितने ही वाद-विवाद हों, किन्तु इसका प्रचार होना अनिवार्य है। जिस मतवादका आश्रय ग्रहण करके आज संसारके लाखों-करोड़ों मनुष्य यह सोचने लगे हैं कि इसके द्वारा हमारे जीवनकी जटिल समस्याओंका समाधान होगा, हमारी अतृप्त आशा-आकांक्षाओंकी पूर्त्ति होगी और निकट भविष्यमें हमारे सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवनमें एक बार फिर शान्ति एवं सुव्यवस्थाकी स्थापना होगी और हम निश्चिन्त होकर अपनी जीवन-यात्रा आरम्भ करेंगे, वह ऐसा नहीं है कि उसे नीति एवं धर्मके विरुद्ध अथवा कोरे आदर्शवादियोंका स्वप्न बताकर उड़ा दिया जाय। जहांतक समाजवादके आदर्शका सम्बन्ध है, विभिन्न विचारके

मनीषी विद्वानोंमें बहुत कम मतभेद देखा जाता है। मनुष्य-मात्रका मंगल हो, सब मनुष्य सुखी एवं सम्पन्न हों, इसकी कामना प्रत्येक विचारशील मनुष्य करता है और इसके लिये वर्तमान समाज एवं राष्ट्र-व्यवस्थामें परिवर्तन होना आवश्यक है, इस बातको भी अधिकांश लोग स्वीकार करते हैं। मतभेद केवल कार्य-पद्धतिको लेकर है।

साम्यवादके आदर्श द्वारा परिचालित सोवियट रूसका दृष्टान्त आज हमारे सामने है। इतना तो हमें मानना ही पड़ेगा कि इस आदर्शने रूसकी करोड़ों उपेक्षित, लांछित एवं निर्यातित जनताको स्वेच्छाचारी जारके निर्मम-निष्ठुर शासनसे मुक्त कर दिया और उनके मनमें नूतन आशा, आकांक्षा एवं हृदयमें एक नूतन कर्मोन्मादनाकी सृष्टि कर दी है। मार्क्सवादी अर्थनीतिके आधारपर नियन्त्रित रूसकी समाज एवं राष्ट्र-व्यवस्थाको जो अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है और हो रही है, उसे सभी निष्पक्ष विचारकों एवं अर्थनीतिके पण्डितोंने स्वीकार किया है। पूंजी-वादी देशोंमें जिस समय आर्थिक संकट, कुव्यवस्था एवं अवनति फैल रही है, उस समय उनके एक पड़ोसी देश सोवियट रूसमें सभी दिशाओंमें प्रगति देखी जा रही है। सब प्रकारके व्यवसाय और उद्योग-धन्धोंकी उन्नति, बेकारीकी समस्या, देशवासियोंकी क्रमशः बढ़ती हुई समृद्धि और सबसे बढ़कर सोवियट रूसकी विपुल शक्ति एवं दुर्जेय सैन्यबलने स्वभावतः लोगोंके मनमें साम्यवादके आदर्श एवं नीति तथा उसकी कार्य्य-पद्धतिके

सम्बन्धमें जाननेकी उत्कण्ठा उत्पन्न कर दी है। मार्क्सके मतवादका हमारे देशके शिक्षित तरुणवर्गमें बहुत-कुछ प्रचार हुआ है सही, किन्तु साहित्य क्षेत्रमें वह अब भी बहुत-कुछ अंग्रेजी भाषातक ही सीमाबद्ध है और अंग्रेजी भाषामें यह साहित्य विशाल है। मातृभाषा हिन्दीमें इस प्रकारके साहित्यका क्षेत्र अभीतक अत्यन्त संकुचित है और जो लोग अच्छी तरह अंग्रेजी नहीं जानते, उनका इस विषयका ज्ञान भी अधूरा ही कहा जायगा। समाजवाद या साम्यवादके सम्बन्धमें हिन्दीमें कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, किन्तु फिर भी इस विषयमें अभी ऐसी पुस्तकोंके प्रकाशित होनेकी काफी गुंजाइश है, जिनसे केवल हिन्दी जाननेवाले ज्ञानपिपासुओंको साम्यवादके मूल सूत्र तथा उसके सिद्धान्तोंका प्रारम्भिक ज्ञान हो और वे इसकी अच्छाई या बुराईके सम्बन्धमें स्वतन्त्र रूपसे विवेचना कर सकें।

इसी उद्देश्यको ध्यानमें रखकर वर्तमान पुस्तककी रचना की गयी है और इसके द्वारा यदि यह उद्देश्य किञ्चिद् भी सफल हुआ, तो इसमें ही लेखक अपने श्रम एवं प्रयासको सार्थक समझेगा।

मिथिला कालेज (दरभंगा) — **जगन्नाथप्रसाद मिश्र**

७-७-१९३९

समाजवाद क्या है ?

वर्तमान समाज

वर्तमान समाज—जिस समाजमें हम लोग वास कर रहे हैं, वह चिर कालसे इसी रूपमें नहीं चला आता है। आदिम युगमें मनुष्यको प्रकृतिके साथ अनवरत संग्राम करते हुए जीविका निर्वाह करना पड़ता था। उस समय उसके पास शारीरिक बलके सिवा और कोई साधन नहीं था। केवल हाथों द्वारा ही उसे अपना खाद्य संग्रह करना पड़ता था। इसके बाद उसने क्रमशः पत्थर, लोहा आदि धातुओंका प्रयोग करके हथियार बनाना सीखा और इन्हींके द्वारा अपना शिकार और खेती करके अपने लिये खाद्य-पदार्थ जुटाने लगा। समाजकी इस अवस्थामें क्रमशः परिवर्तन होता गया और नये-नये औजारोंके आविष्कारके साथ-साथ उत्पादन प्रणालीमें भी उन्नति होती गयी। मनुष्यकी जीवन-प्रणाली

जिस क्रमसे स्वच्छन्द होती गयी, ठीक उसी क्रमसे आदिम युगका संघबद्ध समाज-जीवन भी शिथिल होता गया। उस आदिम कालके यौथ (Joint) जीवनमें समाजके सब लोग मिलकर जो वस्तु उत्पन्न करते थे, उसका उपयोग सब लोगों द्वारा समान रूपमें किया जाता था। किसी एक व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किसी वस्तुका दूसरे व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत वस्तुके साथ अदला-बदला करनेकी जरूरत नहीं होती थी। उस समय मनुष्यकी आवश्यकताएं भी बहुत कम थीं। एक परिवारके लोग अपने प्रयोजनकी चीजें स्वयं तैयार करके अपनी जरूरतोंको पूरा कर लेते थे। इसके बाद क्रमशः जब एक व्यक्ति द्वारा उत्पन्न की गयी चीजें आवश्यकताओंसे अधिक होने लगीं तो उस वस्तुके अतिरिक्त अंशके साथ दूसरे व्यक्ति द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुके अतिरिक्त अंशका विनिमय होना शुरू हुआ। विनिमयकी यह प्रथा क्रमशः बढ़ती गयी और समाजमें जितने लोग वस्तु उत्पन्न करनेवाले थे, वे सब एक-दूसरेपर निर्भरशील रहने लगे। अब एक परिवारकी आवश्यकताएं उस परिवारके लोगों द्वारा ही नहीं पूर्ण की जा सकती थीं। इस प्रकार समाज द्वारा उत्पादित सम्पत्तिके ऊपर सबका जो समान अधिकार चला आता था, वह अब विनिमय-प्रथाके कारण कायम नहीं रह सका और व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा उसके ऊपर व्यक्तिगत स्वत्वकी पुष्टि होने लगी। इस व्यक्तिगत सम्पत्ति अर्थात् सम्पत्तिके ऊपर व्यक्तिविशेषके मालिकाना हकके साथ-साथ बहुत लोगोंके ऊपर कुछ लोगोंका प्रभुत्व भी आरम्भ

हुआ और तभीसे समाजके अन्दर दो प्रकारके श्रेणी-विभाग देखे जाने लगे—एक धनिक श्रेणी, और दूसरी दरिद्र श्रेणी।

वर्तमान समाजका गठन फिउडल (Feudal) या सामन्त-समाजको ध्वंस करके हुआ है। सामन्त-समाजके चिताभस्मके ऊपर ही इस समाजकी नींव खड़ी की गयी है। १७५०-१८६० ई० के बीच नाना प्रकारके यन्त्रोंका आविष्कार होनेके कारण सामन्त-समाजकी भित्ति शिथिल होने लगी। यूरोपके विभिन्न देशोंमें नित्य नये-नये यन्त्रोंका आविष्कार होने लगा और यूरोपके सब देश इस यन्त्रदेवताके जय-गानसे मुखरित होने लगे। इस यन्त्रदेवताके चरणतलमें अपने भविष्यत्‌को निश्चित भावसे समर्पण कर देना ही उस समय यूरोपकी प्रत्येक जातिकी चरम साधना हो रही थी। जिनके हाथमें पूंजी थी, वे नये-नये यन्त्र खरीद कर छोटे-छोटे कारखाने खोलने लगे और इन सब कारखानोंमें पहलेकी अपेक्षा अधिक परिमाणमें माल तैयार होने लगा। कल-कारखानोंमें वृहद् रूपमें यन्त्र-उत्पादनकी इस व्यवस्थासे समाजमें एक नये युगका आविर्भाव हुआ। इन कल-कारखानोंके मालिक, पूंजीपति क्रमशः शक्तिशाली होने लगे और सामन्त श्रेणी अर्थात् जमीन्दारोंके हाथसे राष्ट्रका शासनसूत्र छीन लेनेके लिये उन्होंने संग्राम शुरू कर दिया। इसी संग्रामका चरम रूप हमें फ्रांसके राजविप्लवमें देख पड़ता है, जिसके फलस्वरूप शासनसूत्र सामन्त श्रेणीके हाथसे छिनकर बुर्जुआ या धनिक वर्गके हाथमें आ गया।

१७६१ ई० में फ्रांसकी राज्यक्रान्तिकी वह्निशिखा शान्त हुई सही, किन्तु उसकी चिनगारियां यूरोपके विभिन्न देशोंमें फैले बिना नहीं रहीं। एक ओर तो द्वन्द्व एवं सङ्घर्ष सामन्तशाहीके समर्थकों और इस नये धनिक वर्गके बीच चलने लगे और दूसरी ओर धनिक वर्गके अत्याचार एवं शोषणके विरुद्ध अथक परिश्रम करनेवाले और बहुत थोड़े वेतनपर सन्तुष्ट रहनेवाले श्रमिक और किसानोंकी क्षीण प्रतिवाद-ध्वनि भी सुनाई पड़ने लगी। इन अत्याचार-पीड़ित एवं शोषित श्रमिकोंकी अभाव-अभियोगकी वाणी दावेके रूपमें शीघ्र ही समाजके सामने उपस्थित की जाने लगी। सर्वहारा मजदूर श्रेणीकी इस अभावअभियोग-वाणीको वैज्ञानिक स्वरूप देकर तथा सामाजिक कल्याणके आदर्श द्वारा उसकी प्राणप्रतिष्ठा करके संसारके सामने उसकी जयघोषणा करनेका श्रेय कार्ल मार्क्स नामक मनीषी पण्डितको है। सृष्टिमें ही ध्वंसका बीज छिपा हुआ रहता है—यह सत्य इस मतवाद द्वारा प्रमाणित हुआ। धनिक समाजके अन्दर ही उसके ध्वंसका बीज निहित था—सर्वहारा मजदूर श्रेणी ही उस ध्वंसका बीज थी।

कार्ल मार्क्स

मार्क्सकी जीवन-कहानी—आजसे एक शताब्दीसे कुछ वर्ष पहलेकी बात है। भौतिक सभ्यताके केन्द्रस्थल यूरोपमें उस समय नवयुग-प्रवर्तनके लक्षण चारों ओर प्रकट हो रहे थे। एक ओर फ्रांसीसी राजविप्लवका साम्य, स्वाधीनता एवं बन्धुत्वका आदर्श

सारे यूरोपके राजनीतिक वातावरणमें एक अभूतपूर्व भावोन्मादकताका सञ्चार कर रहा था, और दूसरी ओर औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के फलस्वरूप वहांके आर्थिक जगतमें बड़े-बड़े कल-कारखानोंके स्थापित होनेसे लोग स्वर्णयुगके स्वप्नमें विभोर हो रहे थे। राजनीतिक एवं आर्थिक—इन्हीं दो क्रान्तियोंके सन्धि-कालमें १८१८ई० की ५ मईको एक ईसाई धर्मावलम्बी यहूदी परिवारमें हेनरिक कार्ल मार्क्सने जन्म ग्रहण किया था।

लड़कपनमें ही कार्ल मार्क्सने जिस प्रतिभाका परिचय दिया था, उससे पिताके मनमें पुत्रके उज्वल भविष्यके सम्बन्धमें आशाएं उठने लगी थीं। पुत्र कानूनकी शिक्षा प्राप्त करके ख्याति और यश प्राप्त करेगा, इस अभिप्रायसे ही मार्क्सके पिताने उसे विश्वविद्यालयमें भेजा था। किन्तु जिस विराट् एवं विश्वविख्यात प्रतिभा द्वारा मानव सभ्यताके इतिहासमें एक नवयुगका प्रवर्तन होनेवाला था, वह कानूनकी शिक्षाकी संकीर्ण परिधिके अन्दर अपनेको किस प्रकार सीमाबद्ध रख सकता था। ज्ञानपिपासु मार्क्सने राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति, समाजविज्ञान, दर्शन आदि समस्त विषयोंको लेकर अध्ययन आरम्भ किया। सब कुछ देखने, जानने और समझनेके लिये तरुण मार्क्सका कौतूहल जाग्रत हो उठा।

समाजविज्ञानके सम्बन्धमें गम्भीर गवेषणाके बाद मार्क्स जिस सिद्धान्तपर पहुंचा, वह तत्कालीन समाजके लिये सांघातिक

था। थोड़े समयके अन्दर ही अपने विचारोंके कारण मार्क्स उग्रवादीके रूपमें विख्यात हो गया। प्रशियामें कुछ दिनोंतक समाचारपत्रोंमें लेख लिखनेके बाद सरकारकी शनिदृष्टि मार्क्सके ऊपर पड़ी।

१८४२ ई० में मार्क्स स्वदेशसे निर्वासित होकर पेरिस पहुंचा। वहां कई प्रसिद्ध फ्रांसीसी समाजवादियोंके साथ उसकी बातचीत हुई, जिनमें एक प्रुधन और दूसरा मार्क्सका सुप्रसिद्ध सुहृद एन्जेल्स था। पेरिसमें ही एन्जेलसके साथ मार्क्सके ऐतिहासिक बन्धुत्वका सूत्रपात हुआ।

विप्लवी जीवन किसी भी एक स्थानमें बहुत दिनोंतक स्थायी होकर नहीं रह सकता। इसीलिये मार्क्स भी अधिक दिनोंतक पेरिसमें नहीं रह सका। १८४८ ई० में पेरिससे निर्वासित होकर मार्क्स ब्रुसेल्स (बेलजियम) पहुंचा और एक सालतक वहीं रहा। इसी समय इसने प्रुधनकी (Philosophy of Poverty) 'दारिद्र्य दर्शन' नामक पुस्तककी तीव्र समालोचना करके (Poverty of Philosophy) 'दर्शनका दारिद्र्य' नामक एक पुस्तक लिखी। ब्रुसेलसमें रहते समय 'League of the Just' नामक एक संघके साथ उसका सम्बन्ध स्थापित हुआ। यही संस्था आगे चलकर साम्यवादी संस्थाके रूपमें परिणत हुई। इस संस्थाके लिये ही मार्क्सने एन्जेल्सके साथ विख्यात (Communist Manifesto) कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टोकी रचना की थी। १८४८ ई० में जिस विप्लवका धूमकेतु फ्रांसमें राजनीतिक गगनमें देखा गया था, उसके आगमनकी आशा

मार्क्स पहलेसे ही कर रहा था। 'कम्यूनिस्ट घोषणापत्र' की रचना अभी समाप्त भी नहीं हो पायी थी, जबकि पेरिसमें विप्लव शुरू हो गया। अब मार्क्सके लिये पुस्तकके पन्नोंमें मन लगाये रहना सम्भव नहीं था। वह पेरिसकी ओर दौड़ पड़ा। किन्तु अधिक दिनोंतक वह पेरिसमें नहीं रह सका। वहांसे कोलोन लौटकर साम्यवादी समितिके कई सदस्योंके साथ उसने एक विप्लववादी पत्रका सम्पादन करना आरम्भ किया। उक्त पत्रमें उसने साम्यवादियोंके युद्धकौशल क्या होने चाहिये, इस सम्बन्धमें कई सारगर्भ लेख लिखे।

पेरिसका विप्लव सफल नहीं हुआ। जर्मनी और फ्रांसमें विप्लवका दमन हो जानेसे प्रतिक्रियावादियोंकी शक्ति बढ़ गयी। १८४६ ई० में मार्क्स खाली हाथ लन्दन पहुंचा। मार्क्सका लन्दन-जीवन उसके आदर्शकी दृष्टिसे गौरवपूर्ण होनेपर भी, रोग और दारिद्र्यके साथ संग्राम करते हुए अत्यन्त दुःखके साथ व्यतीत हुआ। लगभग दस वर्षतक मार्क्सको अपने परिवारके लोगोंके साथ आध पेट खाकर रहना पड़ा था। इस अवस्थामें उसके लिये ऐसे दिन भी बीते थे, जबकि उसे अपनी पोशाकतक बन्धक रखनी पड़ी थी। सामान्य धनके अभावमें उसकी सन्तानकी अकाल मृत्यु हो गयी। किन्तु इन सब विपदाओंके बीच भी मार्क्स अपने जीवनमें कभी आदर्शच्युत नहीं हुआ। उसके आदर्शका मार्ग यद्यपि दुर्गम एवं कण्टकाकीर्ण था, किन्तु साथ ही उसका साहस भी दुर्धर्ष था, और साथही गेनी वेस्टफैलेजके समान

उसे दुलभ जीवनसंगिनी भी मिली थी। लन्दनमें रहते हुए मार्क्सने अपने जीवनकी अमर कीर्ति समाजतंत्रवादकी वैज्ञानिक व्याख्याके कार्यमें मन लगाया। ब्रिटिश म्यूजियममें प्रतिदिन लगातार कई घण्टेतक अविराम परिश्रम करनेके बाद उसने अपनी बृहत् पुस्तक "Capital" की रचना समाप्त की। यह "कैपिटल" पुस्तक आज भी सारी दुनियामें बड़े आदरके साथ देखी जाती है और समाजवादी तो धर्मपुस्तकके समान श्रद्धाभावसे इसका अध्ययन करते हैं।

"कैपिटल" पुस्तक चार खण्डोंमें विभक्त है। मार्क्सने केवल प्रथम खण्डकी ही यथार्थ रूपमें रचना की थी; बाकी खण्डोंको एन्जेल्सने मार्क्सके विभिन्न लेखोंसे संग्रह करके प्रकाशित किया। १८६७ ई० में "कपिटल" के प्रकाशित होनेके पहले ही मार्क्सका सम्बन्ध (First International) 'प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संघ' के साथ स्थापित हुआ। मार्क्स इसके संस्थापकोंमें अन्यतम था। उसीके ऊपर उसके प्रथम घोषणापत्र (Manifesto) की रचनाका भार पड़ा और मार्क्सने अपने मतानुसार इस घोषणापत्रकी रचना की। बादमें प्रुधन और बाकुनिनके साथ मार्क्सका मतभेद होनेके कारण अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघमें कार्यकी अपेक्षा आत्मकलह ही विशेषरूपमें चलने लगा। इस आत्मकलहके फलस्वरूप ही १८७५ ई० में "इण्टरनेशनल" का अस्तित्व लुप्त हो गया। इसके बाद १८७७-७८ ई० में जब मार्क्स "कैपिटल" का दूसरा खण्ड प्रकाशित करनेके लिये व्यस्त हो रहा था, उसी समय रोगाक्रान्त

होकर उसे शय्याकी शरण लेनी पड़ी। इसी बीचमें प्रियतमा पत्नीकी मृत्यु हो जानेसे मार्क्सकी दुःख-वेदना और भी बढ़ गयी; और फिर वह एक दिनके लिये भी रोग-शय्याका त्याग करनेमें समर्थ नहीं हुआ। उसकी जीवनीशक्ति क्रमशः क्षीण होने लगी। १८८३ ई० की १४ वीं मार्चको उसकी मृत्यु हो गयी।

कार्ल मार्क्सका समस्त जीवन एक निरवछिन्न धाराके समान है। यश, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य, सम्पत्ति—सब पीछे रह गयी; पिता-माताकी सारी अनुनय-विनय व्यर्थ हुई; गृहपरिवारका मोह मनको मुग्ध करनेमें समर्थ नहीं हुआ। विप्लवी मार्क्स राहोंमें भटकता हुआ धूल छानने लगा। उसकी पत्नीके एकनिष्ठ प्रेम और सेवाने सारे द्वन्द्व एवं विरोध, दुःख एवं यन्त्रणाके बीच भी उसे बहुत कुछ शक्ति एवं उत्साह प्रदान किया था सही, किन्तु यह प्रेम उसके मन, प्राण एवं आत्माको गृह-परिवारकी चतुः सीमातक आवद्ध करके नहीं रख सका। उसका प्रेमिक हृदय पत्नीके दुःख-दर्दसे व्यथित होता, उसका स्नेहवारुण पितृ-हृदय सन्तानके कष्टोंको देखकर वेदनातुर हो उठता, किन्तु यह सब एक दिनके लिये भी उसे आदर्शसे, कठिन कर्तव्य-पथसे विचलित नहीं कर सका।

अभिन्नहृदय मित्र एञ्जेलसके धनपर निर्भर रहते हुए उसे जीवनके अनेक दिन व्यतीत करने पड़े थे। समाचारपत्रोंमें लिखकर भी वह कुछ उपार्जन कर लिया करता था, किन्तु इससे उसके परिवारका यथेष्ट भरण-पोषण नहीं होता था; उसकी स्त्री

और सन्तानके अभाव नहीं मिटते थे। विप्लवी भावनाओंमें उसका मन इतना मस्त रहा करता था कि जो कुछ धन हाथमें आता, उसका अधिकांश संघ-गठन, प्रचार-कार्य आदिमें खर्च हो जाया करता था। अपने जीवनमें जिस आदर्शको उसने वरण कर लिया था, उस आदर्शके आगे उसे और सब बातें तुच्छ जँचती थीं। संसार, गृह-परिवार, आत्मीय स्वजन—ये सब लुप्त हो जाते, और रह जाता केवल आदर्श और उसे कार्यान्वित करनेकी साधना। जीवनकी यह आदर्श-साधना ही ध्रुवताराकी तरह उसके सामने सदा ज्वलन्त रूपमें वर्तमान रहती थी।

———

समाजवाद—आदर्श

समाजवाद अथवा साम्यवाद आधुनिक युगका वह आदर्श है, जिसने कोटि-कोटि मनुष्योंके विचार-जगतमें एक विप्लवकी सृष्टि करके उनकी भावधाराकी गतिको एकदम बदल दिया है। आदर्शके रूपमें इसका उद्देश्य है ऐसे समाजकी स्थापना करना, जिसमें धनके उत्पादन एवं वितरणके साधनोंपर (Means of production and distribution) सर्वसाधारणजनका स्वत्व होनेके परिणामस्वरूप समाजमें किसी प्रकारका श्रेणी-भेद न रह जाय। इस आदर्शको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये साम्यवाद एकमात्र सामाजिक क्रान्तिके साधनपर विश्वास करता है, अर्थात् समाजमें क्रान्तिकी सृष्टि करके समाज-व्यवस्थामें आमूल परिवर्तन कर देना, जिससे समाजमें श्रमजीवियोंकी सत्ता स्थापित हो, दूसरेके

श्रमपर जीविकानिर्वाह करनेवाले शोषक दल (Parasites) की नहीं। यही श्रमजीवी समुदाय साम्यवादके सिद्धान्तको कार्यरूपमें परिणत करके यथार्थ साम्यवादमूलक समाजकी स्थापना करेगा। साम्यवादका यह आदर्श और कार्य-प्रणाली, दोनों ही आज मनुष्यके मनमें कितने ही प्रश्नोंकी सृष्टि कर रहे हैं—राष्ट्र, समाज, नीति, धर्म आदिके सम्बन्धमें एक नवीन दृष्टिकोणसे विचार करनेके लिये प्रेरित कर रहे हैं। मनुष्य आज अपने मनमें यह प्रश्न करता है कि जिन परम्परागत नीति, न्याय एवं धर्मके सिद्धान्तोंपर वर्तमान मानव समाजका गठन हुआ है, उन्हें ज्योंके-त्यों रूपमें मानते रहनेसे क्या सचमुच मानव जातिका कल्याण हो सकता है? आधुनिक सभ्यताके फलस्वरूप समाजमें नाना प्रकारकी जो जटिल समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं, उनका समाधान क्या साम्यवाद द्वारा हो सकता है? समाजमें धनके असम विभाजनके कारण बहुसंख्यक मनुष्योंकी अतृप्त आशा-आकांक्षाओंकी पूर्ति क्या साम्यवाद द्वारा हो सकती है? ये ही प्रश्न हैं, जिन्होंने आज मनुष्यके हृदयमें नूतन आशा-आकांक्षाओंको उद्दीप्त करके उसकी कल्पनादृष्टिके सामने एक नूतन स्वप्न-राज्यकी सृष्टि कर दी है और अपने इस स्वप्न-राज्यको वास्तविक रूप प्रदान करनेके लिये आज वह एक अभूतपूर्व कर्म-प्रेरणाका अनुभव कर रहा है।

उद्देश्य

साम्यवादका उद्देश्य क्या है? इस प्रश्नको लेकर भी साम्यवादके सम्बन्धमें बहुत कुछ भ्रान्त धारणाएं फैली हुई हैं। साम्यवाद

एक श्रेणीका धन बलपूर्वक छीनकर दूसरी श्रेणीको धनवान बनाना चाहता है; साम्यवाद व्यक्तिकी अपेक्षा समाजको उच्चतम स्थान प्रदान करता है, जिससे व्यक्तित्वके विकासमें बाधा उत्पन्न हो सकती है; साम्यवाद मानव जीवनमें नीति, सदाचार, धर्म आदि श्रेष्ठ गुणोंका जो स्थान है, उसकी उपेक्षा करके एकमात्र भौतिक सुखोंको ही महत्व प्रदान करता है—साम्यवादके विरोधमें किये जानेवाले इन सब आक्षेपोंका उत्तर संक्षेपमें यही हो सकता है कि सम्पूर्ण मानव-समाजके कल्याणके लिये व्यक्तिकी सर्वाङ्गीण उन्नति और व्यक्तित्वके चरम विकासके लिये ही साम्यवाद यह सब करता है।

(साम्यवादी धनवानोंका धन इसलिये अपहृत करना (Expropriation) नहीं चाहता कि उस धनसे गरीबोंको धनवान बना दिया जाय, बल्कि साम्यवादी यह चाहता है कि धनका वितरण इस रूपमें हो, जिससे किसी एक वर्गके हाथमें धनका सञ्चय होने न पाये और श्रमजीवियोंको अपने श्रमका अधिकसे अधिक पुरस्कार मिले, ताकि वे अपने कामोंमें और भी दिलचस्पी दिखलायें) इस समय क्या होता है ? किसी कारखानेमें व्यवसाय-की चाहे कितनी ही उन्नति हो, किन्तु उसमें काम करनेवाले मजदूर यह जानते हैं कि वे अपने निर्दिष्ट वेतनसे अधिक नहीं पा सकते। उस कारबारमें जो मुनाफा होता है, उसका अधिकांश डाइरेक्टरों तथा शेयरहोल्डरोंको मिलता है। मजदूरोंका यदि उसमें कोई भाग होता भी है, तो बहुत कम। इस प्रकारकी व्यवस्थामें

मजदूर विशेष उत्साह एवं मनोयोगके साथ काम नहीं कर सकते। इसके विपरीत, यदि श्रमजीवियोंको यह विश्वास हो जाय कि कारबारमें खर्च काटकर जो मुनाफा होगा, उसपर पूर्ण अधिकार उन्हीं लोगोंका होगा तथा उनके परिश्रम द्वारा उपार्जित धन धनिकोंकी विलास-वासनाओंमें अपव्यय नहीं होगा और इस धनसे उनके जीवनके सुखोपभोगोंकी तृप्ति होगी, तो वे और भी उत्साहके साथ काम करेंगे। साम्यवाद व्यक्तिकी अपेक्षा समाज-को इसलिये उच्च स्थान प्रदान करता है, जिससे व्यक्तिके व्यक्तित्व का विकास सम्भव हो। इस समय अधिकांश व्यक्ति आजीवन अन्न-वस्त्रकी चिन्ताओंको लेकर ही व्यस्त रहा करते हैं। उनका सारा जीवन कठिनाइयोंके साथ संग्राम करते हुए स्थूल आव-श्यकताओंकी पूर्तिमें ही व्यतीत होता है। अपने तथा अपने परिवारके लिये जीवनकी अनिवार्य आवश्यकताओंको जुटानेमें ही उनकी सारी शक्तियां संलग्न हो जाती हैं। इस प्रकारकी स्थितिमें ही रहकर आज करोड़ों स्त्री-पुरुष जीवन धारण करते हैं और अन्तमें अपनी जीवन-लीला समाप्त करके चल बसते हैं। उनके लिये जीवनके वे सारे सुख एवं भोग—जिनका सम्बन्ध मनुष्यके मन, बुद्धि और आत्मासे है—स्वप्नवत् बने रहते हैं। इस श्रेणीके लोगोंके व्यक्तित्वका विकास क्या वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें कभी सम्भव हो सकता है ? व्यक्ति-स्वातंत्र्यवादी क्या कलेजे पर हाथ रखकर यह कह सकते हैं कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें सब लोगोंके लिये अपने व्यक्तित्वके विकासका समान सुयोग प्राप्त

होता है ? सिवा कुछ थोड़े-से धनवानोंके क्या बाकी लोगोंके लिये साहित्य, संगीत, कला आदिके सुखोपभोग-साधन सहज ही उपलब्ध हैं ? साम्यवादी इस बातको महसूस करता है कि अपनेको परिपूर्ण रूपमें अभिव्यक्त करनेके मार्गमें दरिद्रता एक बहुत बड़ी बाधा है। जीवन जहां दारिद्र्य एवं अभावके अभिशापसे अभिशप्त रहता है, वहां आत्मप्रकाशकी सम्भावना बहुत कम रहती है इसलिये साम्यवादी अधिकांश मनुष्योंके जीवनको अभाव एवं दरिद्रताके अभिशापसे मुक्त कर देना चाहता है, जिससे उनके व्यक्तित्वका विकास सम्भव हो प्रत्येक व्यक्तिके अन्तरमें जो निहित शक्तियां रहती हैं, उनकी अभिव्यक्तिके लिये साम्यवादी प्रत्येक नर-नारीको बन्धनमुक्त कर देना चाहता है। इस प्रकार बन्धनमुक्त होकर ही व्यक्ति आत्मप्रकाश कर सकता है। जबतक व्यक्तिको कल क्या खानेको मिलेगा, इसकी चिन्ता सताती रहेगी तबतक वह यह समझता रहेगा कि आज जहां वह काम कर रहा है, कल वहांसे वह हटाया जा सकता है अथवा जिस कारखानेमें वह काम कर रहा है, उसके बन्द हो जानेपर जीविकाकी तलाशमें उसे दर-दर भटकना पड़ सकता है, या व्यापारकी मन्दीके कारण कारबारमें अपेक्षाकृत कम लाभ होनेसे कारखानेका मालिक उसके वेतनमें कमी कर सकता है, तबतक उसकी दुश्चिन्ताएं क्या उसे जीवनमें सुखोपभोगके लिये अवसर प्रदान कर सकती हैं? सम्पूर्ण मानव-जातिको इन दुश्चिन्ताओंसे मुक्त करना ही साम्यवादका चरम उद्देश्य है। समाजवादी दरिद्रता रूपी विषवृक्षको—जो

अधिकांश मनुष्योंके जीवनको पंगु बना रहा है—समाजसे उखाड़ फेंकना चाहते हैं। वह दारिद्र्यको प्राचुर्यमें रूपान्तरित करना चाहता है और इस प्राचुर्यके ऊपर सब मनुष्यका समान अधिकार (Universalism in plenty) स्थापित करना चाहता है। वह समाजके प्रत्येक मनुष्यको स्वास्थ्य एवं समृद्धि, शिक्षा एवं संस्कृतिका अधिकारी बनाना चाहता है। वह प्रत्येक घरमें अन्न-वस्त्रकी प्रचुरता देखना चाहता है। वह इस बातको पूर्ण हार्दिकताके साथ अनुभव करता है कि धनोत्पादनके मुख्य साधनोंपर जबतक व्यक्तिगत अधिकार कायम रहेगा, तबतक लाखों मनुष्य दिन-रात परिश्रम कर भी पर्याप्त अन्न-वस्त्र नहीं पा सकेंगे (इसलिये व्यक्तिगत सम्पत्ति-रूपी जो महापाप आज असंख्य मनुष्योंके जीवनको व्यर्थ बना रहा है, उसके विरुद्ध साम्यवादी धर्मयुद्ध "जिहाद" की घोषणा करते हैं। साम्यवादियोंका यह उद्देश्य इतना महान्, इतना पवित्र एवं इतना मनुष्योचित है कि इसके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी आपत्ति हो ही नहीं सकती। प्रत्येक बुद्धिमान एवं न्यायशील मनुष्यका यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह साम्यवादियोंके इस उद्देश्यकी सफलताकी कामना करे।)

साम्यवादके सम्बन्धमें एक और आक्षेप यह किया जाता है कि यह जड़वादमूलक है—अर्थात् मनुष्यके जीवनमें सबसे बढ़कर भौतिक सुखोंको ही प्रधानता देता है। किन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो साम्यवादका वास्तविक उद्देश्य इसके सर्वथा विपरीत है। किसी प्रकार दो मुट्ठी अन्न खाकर जीवन धारण करना

मनुष्य-जीवनका लक्ष्य नहीं है। किन्तु वर्तमान समाज-व्यवस्थामें आज हम यही देख रहे हैं कि करोड़ों मनुष्योंके लिये किसी प्रकार भरपेट अन्न और तन ढंकने योग्य वस्त्रकी प्राप्ति ही उनके जीवनका परम पुरुषार्थ हो रहा है। जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त जीवन-संग्राममें लिप्त रहना कोई पुरुषार्थ नहीं है, और न इस प्रकारके जीवनमें मानव-जीवनकी वास्तविक सार्थकता ही कही जा सकती है। मनुष्य नीति, धर्म, सदाचार आदिके सम्बन्धमें तभी सोच सकता है, जबकि वह उदर-चिन्तासे मुक्त हो। दारिद्र्यसे बढ़कर मनुष्यको दुर्नीति एवं पतनकी ओर ले जानेवाला और क्या है? दरिद्रता धर्म, नीति एवं सदाचारका प्रबल शत्रु है। जीवनको समुन्नत एवं संस्कृतिसम्पन्न बनानेमें दरिद्रतासे बढ़कर बाधक और क्या है? खालीपेट धर्माचरण नहीं हो सकता, मनुष्य नीति और सदाचार, विज्ञान और कला, सभ्यता एवं संस्कृतिकी बड़ी-बड़ी बातें सोचतक नहीं सकता। इसलिये साम्यवादी सबसे पहले मानव-समाजको इस उदर-चिन्तासे मुक्त कर देना चाहते हैं, जिससे वह जीवन सम्बन्धी उच्चतम गुणोंके सम्बन्धमें विचार कर सके और उनकी साधनामें आत्मनियोग कर सके। साम्यवादियोंके लिये यही सबसे बड़ी नीति, यही सबसे बड़ा धर्म है। जैसा कि बर्नार्ड शाने लिखा है :—And so we are driven to the conclusion that the modern priest-hood must utterly renounce, abjure, abhor, abominate and

annihilate private property as the very worst of all the devil's inventions for the demoralisation and damnation of mankind. अर्थात् "मानव जातिको दुर्नीति एवं सर्वनाशकी ओर ले जानेके लिये शैतानने जितने उपाय ढूढ़ निकाले हैं, उनमें व्यक्तिगत सम्पत्ति सबसे ज्यादा खराब है, और इसलिये आधुनिक कालके धर्म-प्रचारकोंको इसका सम्पूर्ण वर्जन करनेके लिये, शपथपूर्वक प्रत्याख्यान करनेके लिये, इसे घृणित एवं गर्हित ठहरानेके लिये, इसका समूलोच्छेद करनेके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये।"

समाजवाद—नैतिक भावधारा

समाजवाद या साम्यवादके राजनीतिक एवं आर्थिक स्वरूप ही इस समय हमारे सामने विशेष रूपमें प्रकट हो रहे हैं। किन्तु इसकी नैतिक भावधारा मार्क्सके पहले भी प्राचीनकालमें वर्तमान थी, इस विषयके अनेक प्रमाण हमें मिलते हैं। इस समयके समाजवादी जिस समस्याका समाधान करना चाहते हैं, वह पूर्ण रूपमें आर्थिक समस्या है, और प्राचीनकालके आदर्शवादी धनतन्त्रके मूलगत दोषोंका उल्लेख करते हुए भी जिस प्रकारका समाज-सुधार चाहते थे, वह समाजके नैतिक जीवनमें ही प्रयुक्त हो सकता था, आर्थिक क्षेत्रमें उसकी कोई उपयोगिता नहीं थी। उनका विश्वास था कि मनुष्यमात्र एक ही सृष्टिकर्त्ता द्वारा सृष्ट जीव हैं और साम्यवादके पक्षमें यही सबसे प्रबल युक्ति है, जिसे

मान लेना उचित है। किन्तु इस प्रकारकी युक्तिके पीछे चाहे कितनी ही अनुभूति क्यों न हो, इसकी सहायतासे एक नूतन समाज-व्यवस्थाका गठन करना सम्पूर्ण रूपमें असम्भव था। कारण, मनुष्यकी स्वार्थपरताके साथ जब इस प्रकारकी भावुकता-का संघर्ष होता है, उस समय साम्य एवं बन्धुत्वका भाव कितना शक्तिहीन एवं अन्तःसार-शून्य प्रतीत होने लगता है, यह स्पष्ट ही मालूम हो जाता है। सब युगोंमें हम इस श्रेणीके कुछ आदर्श-वादी भावुक दार्शनिकोंको पाते हैं, जिन्होंने दीन-दुखियोंके प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करते हुए उनके दुःख-मोचनके लिये धनिकोंको अनुप्राणित किया है, जिन्होंने भविष्यके लिये एक आदर्श समाज-व्यवस्थाका चित्र चित्रित करके यह दिखानेकी कोशिश की है कि इस प्रकारकी समाज-व्यवस्थामें दुःख-दारिद्र्य एवं रोग-शोकका अन्त हो जायगा और धनिकों एवं दरिद्रोंमें श्रेणीगत भेद नहीं रह जायगा; इस प्रकारके आदर्श समाजमें सब मनुष्य परस्पर बन्धुवत् व्यवहार करेंगे और प्रत्येक व्यक्ति न्याय और नीतिको मानकर चलेगा। उनका विश्वास था कि सत्यके प्रति अनुराग, भगवानके प्रति श्रद्धा एवं भक्ति क्रमशः मनुष्यके अन्तः-करणको इतना पवित्र एवं उदार बना देगी कि धनिकवर्ग स्वतः दरिद्रोंका दुःख दूर करनेके लिये आगे बढ़ेगा। इन महाप्राण व्यक्ति-योंकी सचाई और आन्तरिकतामें किसी प्रकारका सन्देह न करते हुए भी, इन्हें समाजवादी कहकर आधुनिक समाजवादी स्वीकार नहीं करते। कारण, किसी सुदूर भविष्यमें मनुष्यके

स्वभावमें परिवर्तन होकर आदर्श समाजकी स्थापना सम्भव होगी, इस प्रकारके विश्वासमें समाजवादका लेशमात्र भी नहीं है। दरिद्रोंका दुःख दूर करने, या किसान और मजदूरोंकी आर्थिक एवं नैतिक अवस्थामें उन्नति करनेकी आकांक्षा होनेसे ही किसीको समाजवादी नहीं कहा जा सकता। इस श्रेणीके आदर्शवादी दार्शनिकोंको हम समाज-सुधारक कह सकते हैं, समाजवादी नहीं। भावी समाज-व्यवस्थाके सम्बन्धमें उनका आदर्श चाहे कितना ही महान् एवं व्यापक क्यों न हो, किन्तु अपने इस आदर्शको कार्य रूपमें परिणत करनेके लिये उन्होंने किस मार्गको ग्रहण किया, यही हमारे लिये एकमात्र विचारणीय विषय होगा और इस विचारकी कौसौटीपर ही हम उनके समाजवादी होने या न होनेकी परीक्षा करके देखेंगे। एक ऐसा समय आयगा जब कि मानव-समाज पारस्परिक ईर्ष्याद्वेषको भूलकर साम्य एवं बन्धुत्वके आदर्श द्वारा अनुप्राणित होगा, हिंसा एवं वैर-भावको यह अत्यन्त घृणाकी दृष्टिसे देखेगा; धनी-दरिद्र, सबमें बिना किसी भेदभावके प्रेम एवं मैत्रीका विस्तार होगा; और इस प्रकार सारे विश्वमें ज्ञान एवं भावुकताका साम्राज्य स्थापित होनेपर विश्वप्रेमके प्लावनमें व्यक्तिगत क्षुद्र स्वार्थ, व्यक्तिगत धन सम्पत्ति सबका अन्त हो जायगा, इस प्रकारकी आशा-आकांक्षा जो लोग अपने मनमें पोषण करते हैं, उनकी यह आकांक्षा चाहे कितनी ही आन्तरिक क्यों न हो, किन्तु इन्हें समाजवादी किसी प्रकार भी नहीं कहा जा सकता।

समाज-सेवा एवं लोक-कल्याणके आदर्शसे अनुप्राणित होकर जो लोग कार्य करते हैं, उनके आदर्श और कार्य-पद्धतिमें बहुत कुछ भिन्नता होती है। दीन-दुखियोंका दुःख दूर करना उनकी आर्थिक अवस्थामें सुधार करना उनका उद्देश्य होता है सही, किन्तु दुःख-दरिद्रयका जो मूल कारण है, उसका उच्छेद करनेकी आवश्यकता वे महसूस नहीं करते, और न इसके लिये वे कोई प्रयत्न ही करते हैं। उनका उद्देश्य होता है अधिक-से-अधिक संख्यामें मनुष्योंको अधिक-से-अधिक सुख-सुविधाएं पहुंचाना, (Greatest good to the greatest number) इस प्रकार-की आकांक्षाको हम (Utilitarianism) या समाज-कल्याणवाद कह सकते हैं, सोशलिज्म या समाजवाद नहीं; क्योंकि समाज-वादी इस बातपर विश्वास नहीं करते कि धनिकवर्ग स्वतः न्याय-बुद्धिसे प्रेरित होकर किसी दिन किसान और मजदूरोंके प्रति सदय व्यवहार करने लगेगा और उनके दुःख-कष्टोंसे द्रवित होकर उन्हें विशेष सुविधाएं प्रदान करेगा। वे धनिकवर्गकी सहानुभूति, समवेदना, उदारता, महानुभावता एवं करुणापर विश्वास न करके मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्तियोंपर विश्वास करते हैं। वे धनिकोंसे इस बातकी याचना नहीं करते कि वे दरिद्रोंके प्रति सहानुभूति-सम्पन्न बन और उनके कल्याणके लिये अपने धनका उपयोग करें, बल्कि वे यह दावा करते हैं कि समाजके प्रत्येक व्यक्तिको मनुष्यके समान जीवित रहनेका अधिकार है और जिस समाज-व्यवस्थामें बहुसंख्यक मनुष्य जीवनकी साधारण सुख-

सुविधाओंसे अन्यायपूर्वक वञ्चित कर दिये गये हैं, वह समाज-व्यवस्था किसी प्रकार भी समर्थनीय नहीं हो सकती। देशके करोड़ों किसान-मजदूरोंके जो जन्मगत न्याय्य अधिकार हैं, उन अधिकारोंकी प्रतिष्ठा ही समाजवादका उद्देश्य है, और इस उद्देश्यकी पूर्त्तिपर ध्यान रखकर ही समाजवादी कार्यपद्धति निर्धारित की गयी है।)

संसारमें धनी और दरिद्रोंके बीच जो श्रेणी-भेद हम देख रहे हैं, उसे अनुभव करना तथा समाजमें शोषित, पीड़ित एवं लाञ्छितोंके प्रति जो अन्याय-अविचार हो रहे हैं, उन्हें दूर करनेकी आकांक्षा करना ही यदि समाजवाद हो, तो अवश्य ही प्राचीन ग्रीसके मनीषी दार्शनिक प्लेटोसे लेकर आधुनिक कालके जान स्टुअर्ट मिल, हर्बर्ट स्पेन्सर आदि दार्शनिक समाजवादी कहे जायंगे। प्लेटोने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "Republic" में सम्पत्ति के एकाधिकारवादपर उग्ररूपमें आक्रमण किया है और सम्पत्तिके उपर राष्ट्रका सामूहिक स्वत्व (Common ownership) स्थापित होनेकी आकांक्षा प्रकट की है। प्लेटोके शिष्य अरस्तूने भी यद्यपि व्यक्तिगत सम्पत्तिका समन्वय किया है, किन्तु फिर भी उसने नागरिकोंसे यह अनुरोध किया है कि वे स्वतः प्रवृत्त होकर सङ्घबद्ध रूपमें इस प्रकारकी व्यवस्था करें, जिससे राष्ट्रको सम्पत्तिका जनसाधारण व्यवहार कर सके। ईसाई धर्म-प्रचारकोंने भी उपदेशादि द्वारा साम्यवादके आदर्शका प्रचार किया है। इसके बाद आदर्शवादियोंके इस 'समाजवाद' को हम

टाम्स मूरकी Utopia नामक पुस्तकमें पाते हैं। अठारहवीं शताब्दीमें फ्रांसमें Jean Meslier, Morelly Mably आदि अनेक दार्शनिकोंने समाजवादके आदर्शका प्रचार किया था। इसी समय इङ्गलैण्डमें टाम्स स्पेन्स विलियम आगलिव और विलियम गौडविन आदि आदर्शवादियोंने व्यक्तिगत सम्पत्तिके अधिकारवादकी तीव्र समालोचना करके समाजमें एक नूतन विचारधाराकी सृष्टि की थी। किन्तु इन सब लेखकोंकी पुस्तकोंमें किसी विशेष कार्यपद्धतिका उल्लेख नहीं मिलता। द्वितीय फ्रांसीसी विप्लवके पूर्व जो सब समाज-सुधारक समाजवादी नामसे परिचित थे, उनके मतवादका आधार था—लोक-कल्याण। उस समयके समाजवादी टाम्स मूरके 'इउटोपिया' नामके अनुसार "इउटोपियन समाजवादी" नामसे परिचित हैं। सर टाम्स मूरसे लेकर ओयेन, सेण्ट साइमन, फेरियर प्रोधन प्रभृति समस्त समाजवादियोंको 'इउटोपियन समाजवादी' नामसे अभिहित किया जा सकता है। इनके मतवादको राष्ट्र-सम्पकविहीन समाजवाद कहा जा सकता है। द्वितीय फ्रांसीसी विप्लवके बाद फिर इनका कभी अभ्युथान नहीं हुआ।

मानव समाजके सम्बन्धमें यद्यपि उपर्युक्त मतवादका समम यूरोपमें प्रचार हो चला था, किन्तु फ्रांसीसी विप्लवके पूव इस मतवादको लेकर कोई आन्दोलन खड़ा नहीं किया गया था। आदर्श राष्ट्रकी कल्पनाको वास्तव रूप देनेकी जिन लोगोंने चेष्टा की थी, उनमें Gracchus Babeuf की चेष्टा ही विशेष उल्लेख-

योग्य है। इसने Society of Equals नामसे एक संस्थाकी प्रतिष्ठा की थी, जिसमें हमें सर्वप्रथम संघतन्त्रको राष्ट्र द्वारा कार्यान्वित करनेकी चेष्टाका प्रमाण मिलता है। ग्रैक्स बैकक विशुद्ध गणतन्त्रमूलक प्रजातन्त्रकी प्रतिष्ठा करना चाहता था। विशुद्ध गणतन्त्रमूलक प्रजातन्त्रसे उसका अभिप्राय एक ऐसी समाज-व्यवस्थासे था, जिसमें आलस्यका कोई स्थान नहीं होगा, कोई बेकार बैठकर अन्न-वस्त्र नहीं पा सकेंगे; प्रत्येक नागरिक, उसके लिये जो कुछ प्रयोजनीय होगा, पानेका अधिकारी होगा; प्रयोजनके अतिरिक्त उसे कुछ भी नहीं मिलेगा।

व्यक्तिगत सम्पत्तिका लोप हुए बिना अत्याचार एवं श्रेणी-विशेषके विशेप अधिकारोंका लोप नहीं हो सकेगा। इसके लिये समस्त भू-सम्पत्तिपर राष्ट्रका अधिकार होना चाहिये। कारण, भूमिको यदि सब लोगोंके बीच समान भावसे बांट दिया जाय तो वह दो दिनोंसे अधिक नहीं टिक सकेगी। साम्यको स्थायी करनेके लिये व्यक्तिगत सम्पत्तिका लोप करके राष्ट्रको समस्त धन-सम्पत्तिका मालिक बनाना होगा। राष्ट्र प्रत्येक व्यक्तिको उसकी योग्यताके अनुसार कार्य देगा और उसके लिये जो कुछ प्रयोजनीय होगा, उसे प्रदान करेगा। किन्तु अठारहवीं शताब्दीके इन सब आदर्शवादी दार्शनिकों एवं प्रचारकोंके कार्यको हम यथार्थ रूपमें समाजवाद नहीं कह सकते। कारण, इन सबका आदर्श था एक संघतन्त्रकी स्थापना; और इनके द्वारा प्रचारित साम्यवाद के आदर्शको वह वैज्ञानिक रूप प्राप्त नहीं हो सका था, जो बादमें

चलकर कार्ल मार्क्स और एञ्जेल्स द्वारा हुआ।

ऊपर इस बातका उल्लेख हो चुका है कि दरिद्रोंके प्रति सहानुभूति, प्रचलित समाज-व्यवस्थाकी अनीति एवं अन्यायके प्रति आक्रोश तथा निपीड़ितों, शोपितों एवं वञ्चितोंके प्रति न्याय-विचार करनेकी कामना एवं प्रचेष्टासे ही कोई समाजवादी नहीं कहा जा सकता। जान स्टुअर्ट मिलने अपने आत्मचरित्रमें एक आदर्श समाजके स्थापित होनेकी कामना प्रकट की है, जिसमें समाज आलसी और परिश्रमी—इन दो श्रेणीके मनुष्योंमें विभक्त नहीं होगा, विना काम किये किसीको भोजन नहीं मिलेगा और समाजका यह नियम धनी-दरिद्रके लिये समानरूपमें लागू होगा। इस समय परिश्रमजात वस्तुओंका वितरण जन्मगत अधिकारके ऊपर निर्भर करता है, किन्तु एक दिन ऐसा आयगा, जबकि सर्वजनसम्मत न्यायनीतिके ऊपर उसकी प्रतिष्ठा होगी। एक दिन ऐसा अवश्य आयगा, जबकि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अर्जित धन-सम्पत्ति केवल उसके निजके भोगमें ही प्रयुक्त नहीं होगी बल्कि समाजके सब लोगोंका उसपर समान अधिकार होगा। अपने इन विचारोंके आधारपर मिलने अपनेको समाजवादी भी कहा है, और वस्तुतः जहांतक समाजवादके आदर्शसे सम्बन्ध है, मिलकी इस आदर्श समाज-व्यवस्थासे समाजवादमूलक समाज-व्यवस्थामें बहुत कम अन्तर है। फिर भी मिलको हम समाजवादी नहीं कह सकते। कारण, वृहत्तर मानव समाजकी कल्याण-कामनासे प्रेरित होकर उसने समाज-सुधारकी आकांक्षा

प्रकट की थी—समाज-व्यवस्थामें आमूल परिवर्तन करना उसका उद्देश्य नहीं था।

वैज्ञानिक समाजवादमें, जिसका सर्वप्रथम निरूपण मार्क्सने किया था, आदर्शवादी दार्शनिकों एवं समाज-सुधारकोंकी भावुकताके लिये कोई स्थान नहीं है। इसमें मनुष्यकी दया, करुणा, सहानुभूति, समवेदना आदि सुकुमार उच्च वृत्तियोंके उद्देश्यपर भरोसा नहीं किया जाता, और न यही विश्वास किया जाता है कि इन सब वृत्तियोंके क्रमविकाससे स्वतः एक दिन इस प्रकारकी नूतन समाज-व्यवस्थाकी स्थापना सम्भव होगी, जिसमें आधुनिक समाजके समस्त श्रेणीगत वैषम्यका अन्त हो जायगा, और सब मनुष्य परस्पर न्याय-नीतिके साथ व्यवहार करते हुए प्रेमपूर्वक जीवन धारण करेंगे। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि समाजवादी मनुष्यकी उच्च सुकुमार वृत्तियोंको बिलकुल स्वीकार ही नहीं करता। व्यक्तिविशेष अथवा कुछ मनुष्योंमें पीड़ितों एवं वञ्चितों के प्रति करुणा एवं समवेदनाका भाव हो सकता है और उनका यह भाव समय-समयपर उनके कार्यों द्वारा प्रकट भी होता है, किन्तु कोई समय ऐसा आयगा, जबकि अधिकांश मनुष्य इन सब उच्च वृत्तियों द्वारा अनुप्राणित होकर शोषितों एवं निपीड़ितोंके प्रति न्याय करनेके लिये प्रस्तुत होंगे, इस बातका विश्वास समाजवादी नहीं करते; क्योंकि हजारों वर्षका अनुभव उन्हें यह बता रहा है कि अबतक इस श्रेणीके भावुक समाज-सुधारकोंके उपदेश एवं चेष्टाओंके होते हुए भी मानव-समाजका

प्रकृत कल्याण-साधन नहीं हो सका है। पीड़ितों एवं वञ्चितोंके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेवाले दार्शनिकों एवं धर्म प्रचारकोंके उपदेशोंका अबतक जो कुछ परिणाम हुआ है, उससे यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि शोषकवर्ग उच्च सुकुमार वृत्तियोंसे प्रेरित होकर शोषितोंके प्रति न्याय-विचार करने और उनके प्राप्त अधिकारोंको स्वतः सौंप देनेके लिये प्रस्तुत होगा। इसलिये वैज्ञानिक समाजवादी समाज-व्यवस्थामें परिवर्तन लानेके लिये मनुष्यकी उच्च सुकुमार वृत्तियोंपर विश्वास नहीं करते; वे तो संसारके समस्त अन्यायको दूर करनेके लिये एक सुनिर्दिष्ट योजना (Plan) हमारे सामने उपस्थित करते हैं।

मार्क्सवादका मूलसूत्र—डायलेक्टिक

सोशलिज्म, कम्यूनिज्म—सामाजवाद, साम्यवाद आदि शब्द इस समय इतने प्रचलित हो रहे हैं कि शायद ही कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति इनसे अनभिज्ञ हो। किन्तु फिर भी यह निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि समाजवाद या साम्यवादके सम्बन्धमें जो लोग एक सुस्पष्ट एवं सुसम्बद्ध धारणा रखते हैं और उसके मूल-तत्वको समझते हैं, ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत कम है। हमें यह बात जान रखनी चाहिये कि समाजवाद केवल एक राजनीतिक मतवाद अथवा अर्थनीतिके सम्बन्धमें कितने ही सिद्धान्तोंकी समष्टिमात्र नहीं है, बल्कि यह एक अखण्ड एवं अविच्छेद्य तथा सम्पूर्ण दर्शन है। मानव सभ्यताके इतिहासमें अबतक जो घट-नाएं घट रही हैं, उनके वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, नैतिक, दार्शनिक

आदि तथ्योंकी अच्छी तरह छानबीन करके तीव्र विचारबुद्धि और प्रकृतिके द्वारा उनकी परीक्षा-समीक्षा करके और फिर वास्तवके साथ उनका सामञ्जस्य स्थापित करके ही इसके प्रत्येक सिद्धान्त या तत्वका निरूपण किया गया है। यह मनुष्यके सामने एक अस्पष्ट आदर्श रखकर उसकी कल्पनाको रंगीन कर देने और उसकी दृष्टिके सामने एक अलीक कल्पित स्वप्न उपस्थित कर देने का प्रयास नहीं है।

मार्क्सके मतवादका दार्शनिक आधार क्या है, इस प्रश्नके उत्तरमें दो परस्पर संश्लिष्ट विषयोंका उल्लेख किया जा सकता है— Dialectical Materialism और Historical Materialism—अर्थात् आदर्शवादी हेगेलकी डायलेक्टिक युक्तिप्रणालीका जड़दर्शनमें प्रयोग और इतिहासकी वास्तव व्याख्या। इन दो विषयोंका प्रतिपादन करके ही (मार्क्सने अपने मतवादको एक अभिनव रूपमें प्रदान किया है। मार्क्सके पहले आदर्शवादी हेगेल के मतवादका यूरोपकी चिन्ताधारापर विशेष रूपमें प्रभाव पड़ा था। हेगेलके पूर्ववर्ती आदर्शवादी एवं जड़वादी प्रायः सभी दार्शनिकोंने विश्वको स्थितिशील मानकर विश्लेषण किया था; किन्तु हेगेलने इसके विपरीत समग्र जगतको परिवर्तनशील रूपमें स्वीकार किया। उसके मतसे यह संसार सतत् परिवर्तित होता हुआ चल रहा है। इस विपरीतका जो मूलसूत्र है, वही हेगेल द्वारा प्रवर्तित डायलेक्टिक Dialectic अर्थात् वादानुवाद-पद्धति है। हेगेलकी इस पद्धतिके अनुसार समग्र संसार क्रमागत रूपान्तरित

होता आ रहा है। इसमें किसी भी वस्तुको स्थिर समझना भ्रान्तिमूलक है। दृश्यमान् जगतके अन्तरालमें सार-सत्यके रूपमें परमात्माकी जो भावना (idea) है, वह भावना भी क्रम-प्रकाश्य है। यह जड़ जगत जो हमें दृश्यमान् होता है, वह भावना (idea) की ही अभिव्यक्ति है और यह भावना (idea) ही सारसत्य है; जिसे हम जड़ जगत कहते हैं, वह सारसत्य नहीं—गौण है। सृष्टिके मूलमें idea के रूपमें जो सारसत्य है, उसके क्रमविकासकी एक विशेष धाराका हेगेलने निर्देश किया है। वह इस प्रकार है कि जब हम किसी सत्यका आविष्कार करते हैं, उसी समय उसके विपरीत सत्यका सन्धान भी हमें मिलता है। ये दोनों सत्य परस्पर-विरोधी और परस्पर-विपदमान हैं। ज्ञानके मार्गपर जब हम और कुछ अग्रसर होते हैं, तो हम देखते हैं कि ये दोनों परस्पर-विरोधी सत्य एक ही वृहत्तर सत्यके दो पहलू हैं। यह नयाविष्कृत वृहत्तर सत्य हमें ज्ञानके मार्गपर परिचालित करता है, जबतक कि यह सत्य एक और विरोधी शक्तिके सम्मुखीन नहीं होता। तब इन दो विरोधी सत्योंके समन्वयसे एक और नूतन सत्य हमारे सामने प्रकाशित होता है। यही हेगेल द्वारा आविष्कृत Dialectic Method या विरोध समन्वयमूलक पद्धति है। Thesis या भावात्मक Antithesis या अभावात्मक—इन दोनोंके सन्धानके फलसे (Synthesis) समन्वय या सामञ्जस्यकी सृष्टि होती है। इन तीन अंशों को लेकर ही Dialectic Method या विरोध-समन्वय-मूलक पद्धतिका जन्म हुआ है।

आरम्भमें मार्क्सका मतवाद भी हेगेलके इस Dialectical Materialism और Historical Materialism को लेकर ही आरम्भ हुआ था, किन्तु बादमें मार्क्स और उसके सहकर्मी एन्जेल्सने पुरातन आदर्शवादके मोहसे अपनेको मुक्त करके इस डायलेक्टिक पद्धतिका आश्रय ग्रहण करते हुए जड़वादको एक अभिनव रूप प्रदान किया। हेगेलके आदर्शवादको अस्वीकार करके भी मार्क्सने हेगेलके इस कथनको स्वीकार कर लिया कि वास्तव विरोध-समन्वय-मूलक है। किन्तु मार्क्सके मतसे यह वास्तव स्थितिशील न होकर परिवर्तनशील है, विकासकी क्रिया है। समाजमें रहकर मनुष्य अपने जीवनकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये जो उद्योग करता है, उससे उसकी क्षमतामें वृद्धि होती है और उसकी यह क्रमश. क्षमतावृद्धि भी उस विकास-क्रियाका ही रूप है। मनुष्यने अपनी भोजन, वस्त्र एवं गृह सम्बन्धी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये जो उद्योग किये हैं और इन उद्योगोंमें उसे जो सफलता मिली है, इस सफलताका ही नाम प्रगति है। जड़प्रकृतिपर मनुष्यकी क्रमशः विजय, बुभुक्षा एवं रोगका निवारण, अधिकाधिक मनुष्योंकी जीवनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति, जीवनको सब प्रकारसे परिपूर्ण एवं समृद्ध बनानेकी चेष्टा– यही सब मार्क्सकी दृष्टिमें मनुष्यके विकासका प्रकृत रूप है। इसके साथ-साथ ज्ञानका जो विकास हुआ है और इस ज्ञानके कारण ही आंशिक रूपमें मानवताका विकास भी सम्भव हुआ है, इसे मार्क्स अस्वीकार नहीं करता। किन्तु विचारके विकासमें ही

मानवताकी प्रगतिकी वास्तविकता सन्निहित है, इस बातको मार्क्स स्वीकार नहीं करता। भावोंका विकास प्रकृत विकासका एक साधनमात्र है। मानवताका जो प्रकृत विकास हुआ है, उससे ही भावोंकी उत्पत्ति हुई है। प्रकृतिकी शक्तियोंके साथ संग्राम करके जीवनकी आवश्यकताओंको छीननेकी क्रियामें ही मनुष्यको संसारके सारसत्यका सन्धान मिलने लगा। प्रकृतिके साथ मनुष्यका जो संग्राम चल रहा है, उससे ही हमारे भावोंकी उत्पत्ति हुई है। इस क्रियाको न मानकर इसके विपरीत यह मानना कि भावोंके साथ मनुष्यका जो संग्राम चल रहा है और इसके फलस्वरूप विचारोंमें जो प्रगति हुई है, वही इतिहासका मौलिक सारतत्व है और प्रकृतिके साथ मनुष्यका जो प्रकृत-संग्राम चल रहा और उसमें उसे जो क्रमशः सफलता मिल रही है, वह एक गौण वस्तु है—सत्यको उसके सिरके बल खड़ा करना है, (To stand the truth on its head) मार्क्सके जड़वादका यही मूल सूत्र है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्सने हेगेलकी Dialectic पद्धतिको ग्रहण तो किया, किन्तु हेगेलने उसके ऊपर एक प्रकारको रहस्यमय आध्यात्मिकताका जो आवरण डाल रखा था, उसे उसने हटा दिया। इस सम्बन्धम मार्क्सने स्वयं लिखा है :—"Hegel's dialectic is the fundamental principle of all dialectics only after its mystical form has been sloughed off. And that is precisely what distin-

guishes my method" अर्थात् हेगेलकी जो युक्तिप्रणाली है, वही मौलिक सिद्धान्त है—किन्तु उसी दशामें, जबकि उसके ऊपर रहस्यमयताका जो आवरण पड़ा हुआ है, उससे उसको मुक्त कर दिया जाय। ठीक इसी बातको लेकर हेगेलकी प्रणाली और मेरी प्रणालीमें भेद है।

मार्क्सने जब Dialectical Materialism का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, उस समय उसने प्राचीन आदर्शवादी एवं जड़वादी—दोनोंमेंसे किसीके भी मतको सम्पूर्ण रूपसे ग्रहण नहीं किया। उसने लिखा है :—"वर्तमान जगत असामञ्जस्य एवं अनैक्यसे परिपूर्ण होनेपर भी चलमान और परिवर्तनशील है और यह परिवर्तन असुन्दरसे सुन्दर, अस्पष्टसे स्पष्ट, असामञ्जस्यसे सामञ्जय, अचैतन्यसे चैतन्य, वस्तुतः मिथ्यासे सत्यकी दिशामें हो रहा है। किन्तु यह परिवर्तन स्वतः नहीं होता। इस परिवर्तनके पीछे एक उद्देश्य और योजना (Purpose and Plan) होती है। स्वयं मानव-मस्तिष्क ही इस परिवर्तनका मूल है। मनुष्यने जगतको परिवर्तित किया है, किन्तु मनुष्य भी जगतका ही अंगविशेष है; इसलिये जगतके परिवर्तनके साथ-साथ वह अपनेको भी परिवर्तित कर रहा है। दृश्यमान् जगत ही प्रकृत वस्तु है; किन्तु वही सब कुछ नहीं है, वही एकमात्र सत्य नहीं है। यह दृश्यमान् जगत परिवर्तनशील है, अतएव सत्य भी इस परिवर्तनके बीचसे होकर परिवर्तनके मार्गसे परिवर्तनके साथ-साथ प्रकाशित होता रहता है और इस परिवर्तनके कारण ही कल जो सत्य और

प्रकृत था, वह आज मिथ्या हो गया है, और आज जो सत्य और प्रकृत है, वही भविष्यमें नूतनके साथ-साथ मिलकर मलिन हो जायगा और यह नूतन फिर सत्यका सन्धान देगा।

इस परिवर्तनकी सूचना ही Dialectical Materialism हमें देता है और यह बताता है कि यह परिवर्तन किस प्रकार होता है। इस परिवर्तन-प्रणालीका नियम क्या है? इन्हीं सब प्रश्नोंका उत्तर हमें Dialectical Materialism देता है। इसे Dialectical इसलिये कहते हैं कि इस दर्शनके मतसे किसी भी वस्तुके परिवर्तनके मूलमें उसका अन्तर्गत विरोध काम करता है। किसी वस्तु या सामाजिक-संस्था या व्यवस्था-प्रणालीके अन्तर्गत जो विरोध होता है, वह विरोध ही उसके परिवर्तनका कारण होता है, और यही अन्तर्विरोध एक समाज-व्यवस्थाको परिवर्तित करके उससे उत्कृष्ट समाज-व्यवस्थाकी भित्ति स्थापित करता है। अन्तर्विरोधके कारण ही परिवर्तन होता है, इस प्रकारका जो दृष्टिकोण है, उसे ही Dialectic कहते हैं।

Dialectical Materialism में जो लोग विश्वास करते हैं, वे सत्य या प्रकृत जगतको वास्तव जगतसे पृथक् नहीं समझते, और न पृथक् रूपमें उसकी खोज करनेकी चेष्टा करते हैं। वास्तव जगतको बाद देकर जो लोग किसी दैवी या मानसिक प्रकृतिका अनुसन्धान करते हैं, वे अपने कल्पित जगतको ही सत्य मान लेते हैं, और प्रकृत जगतके दोषों एवं त्रुटियोंको दूर करके उसे और भी सुन्दर एवं सुसंगठित बनानेकी चेष्टा नहीं करते।

इस श्रेणीके भावुक दार्शनिकोंको लक्ष्य करके ही मार्क्सने लिखा है:—"Philosophers hitherto have only interpreted the world in various ways; the task is to change it." अर्थात् दार्शनिकोंने अबतक संसारकी विभिन्न रूपमें व्याख्या की है; किन्तु उनका काम होना चाहिये संसारको परिवर्तित करना। मार्क्सके इस कथनका अभिप्राय यही है कि दार्शनिक अबतक सिद्धान्तोंको लेकर ही माथापची करते रहे हैं, उनका जो उचित कार्य है, उसे उन्होंने नहीं किया है। उनका यह उचित कार्य होना चाहिये कि संसारमें परिवर्तन लाना, उसे और भी सुन्दर और सुगम बनाना। मार्क्सकी दृष्टिमें दर्शनशास्त्रका यही वास्तविक स्वरूप है।

डायलेक्टिकके सम्बन्धमें ऊपर जो विवेचना की गयी है, उससे उसके विभिन्न अंगोंका निरूपण निम्नलिखित रूपमें किया जा सकता है:—(१) संसारका सब कुछ परिवर्तित होता हुआ चल रहा है—यह विवर्तन मनुष्यकी आर्थिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विधि-व्यवस्था, यहांतक कि उसके मनकी धारणा या idea के क्षेत्रमें भी परिलक्षित होता है। यह ठीक है कि गतिका वेग सब क्षेत्रोंमें समान रूपसे नहीं होता, किन्तु विश्लेषककी व्यापक दृष्टिमें चिर-स्थिरता कहीं भी नहीं पायी जाती। (२) इस परिवर्तनका बीज वस्तुके अन्तर्गत ही निहित रहता है—यही प्राकृतिक नियम है, इस गतिका वेग वस्तुके अन्तर्गत परस्पर-विरोधी शक्तियोंके संघर्षका परिणाम-मात्र है। किन्तु यह परिवर्तन आकस्मिक रूपमें

विना किसी उद्देश्यके जैसे-तैसे नहीं हो जाता। जड़ पदार्थ, जीवन या मनुष्य द्वारा रचित संस्थाओंका गठन ही इस रूपमें होता है कि उसमें Evolution या क्रमविकासका एक विशेष लक्ष्य अवश्य रहता है। पूर्वके जड़वादियोंने संसारकी जो यांत्रिक व्याख्या की थी, जिससे किसी नूतन वस्तुकी उत्पत्ति सहज ही नहीं जानी जा सकती, उसे मार्क्सने स्वीकार नहीं किया। (३) विवर्तन-प्रणालीका सब क्षेत्रोंमें एक विशिष्ट रूप होता है—पहले वस्तु-विशेषकी उत्पत्ति, फिर उसकी विरोधी शक्तिके साथ उसका संधान और अन्तमें परस्पर दो विरोधी शक्तियोंका समन्वय, और इस समन्वयसे फिर नूतन परिवर्तन-धाराका सूत्रपात। (४) सन्धान के नियमानुसार एक ही समय परस्पर-विरोधी वस्तुओं या शक्तियोंका अवस्थान और एकका दूसरेमें अनुप्रवेश होना सम्भव हो सकता है; किन्तु परिणाममें यह एकत्र अवस्थान कायम नहीं रह सकता। इसलिये विरोध ही क्रम-विकासके मार्गसे सामंजस्य तक पहुंचानेका उपाय है। श्रेणी-संघर्ष द्वारा श्रेणी-भेदके अवसान की जो धारणा है, वह इस नियमके अनुसार ही है। (५) परिवर्तन या प्रगतिकी धारा वृत्ताकार या सरल रेखाके रूपमें नहीं होती—(Spiral) आवर्त्तके समान इसका रूप होना स्वाभाविक है, अर्थात् पग-पगपर हम उन्नतिकी सीढ़ीपर चढ़कर चल रहे हैं, परिणाममें समन्वय (Synthesis) के समय हम ठीक उसी स्थानसे लौट नहीं आते। (६) विवर्तनका वेग सब समय समान नहीं होता—उसका छन्द कभी द्रुतगति और कभी मृदु मन्दगति

रूपमें होता है। क्रम-विकासका रूप अविच्छिन्न स्रोतके समान नहीं होता—एक सारसे दूसरे सारमें जाते समय leap या break होना स्वाभाविक है। सिनथिसिस या समन्वय ठीक दो विरोधी वस्तुओंका मिलन या Compromise नहीं है; उसमें सर्वदा किसी अतिरिक्त गुण अर्थात् quality का आविर्भाव होता रहता है। इस प्रकार मार्क्सने स्थिर किया कि विप्लव इतिहासका अपरिहार्य्य अंग है।

डायलेक्टिक प्रणालीके विभिन्न अंगोंके सम्बन्धमें विचार करनेके बाद हमें अब यह देखना है कि यह Materialism क्या है? क्योंकि Materialism या जड़वादको समझनेके बाद ही हम Dialectical Materialism के वास्तविक मर्मको समझ सकते हैं।

मार्क्सके पूर्व जड़वादी दार्शनिकोंने Materialism या जड़-वादका अर्थ जिस रूपमें लिया है, उससे मार्क्स द्वारा प्रतिपादित अर्थ सम्पूर्ण भिन्न है। विचार और क्रियाकी एकताके कारण मार्क्स दर्शनके अनुसार इस शब्दका जो अर्थ किया गया है, वह उसके पहलेके अर्थसे सर्वथा भिन्न है। आदर्शवाद एवं जड़वादके बीच जो परम्परागत भेद चला आता था, उससे यही समझा जाता था कि विचार एवं क्रियामें एकता नहीं हो सकती। इस भेदके अनुसार आदर्शवादी यह विश्वास करते थे कि मन और भाव जगत ही वास्तविक हैं, और पदार्थ इससे पृथक् हैं। इस विश्वासके कारण जड़वादके साथ हमारे मनमें यह धारणा जम

गयी थी कि जीवनमें किसी उद्देश्य या नैतिक प्रयत्नके लिये कोई स्थान नहीं है और हमारी जीवन-प्रणाली इस रूपमें होनी चाहिये, जिसमें भौतिक पदार्थ ही हमारे लिये सबसे बढ़कर महत्वपूर्ण हों और हमारी तात्कालिक भौतिक कामनाओं एवं काम-वासनाओं की तुष्टि ही हमारे लिये श्रेय हो। जीवनके सम्बन्धमें हमारी जो यह जड़वादमूलक धारणा है, उससे हम जड़वादी मनुष्य उसे ही कहते हैं, जिसके जीवनमें किसी महन् उद्देश्यके लिये कोई स्थान नहीं हो; जो स्वार्थपरायण एवं स्वार्थसेवी हो और जो भौतिक सुखोंकी प्राप्तिमें ही व्यस्त रहता हो। इसके विपरीत आदर्शवादी मनुष्य हम उसे समझते हैं, जो अपनी जीवन-यात्राको एक सिद्धान्त के अनुसार परिचालित करता है और जिसमें तात्कालिक भौतिक कामनाओंकी तुष्टिसे विरक्ति और व्यापक, उदार एवं स्वार्थरहित उद्देश्यके प्रति अनुरक्ति होती है। किन्तु यह भेद तभीतक रह सकता है, जबतक हम विचार और क्रियाको परस्पर भिन्न समझते हैं, क्योंकि इस भेदका आधार ही यह है कि पदार्थ (Matter) और मन (Mind) परस्पर-विरोधी हैं। किन्तु जिस क्षण हम इस बातकी उपलब्धि कर लेते हैं कि जीवन ही क्रिया है और मानव-जीवन सचेतन-क्रिया है, उसी समय आदर्शवाद और जड़वादके बीच यह कठोर भेद नहीं रह जाता। इस भेदके मिट जानेपर जड़वादके मौलिक अर्थमें ही परिवर्तन हो जाता है। इस नूतन परिभाषाके अनुसार जड़वादी मनुष्य वह है, जो यह जानता है कि वह क्या कर रहा है। जो पूर्ण चेतनताके साथ

कार्य करते हुए यह जानता है कि वह इस ढंगसे कार्य क्यों कर रहा है और उसके कार्यका परिणाम क्या होगा। इसके विपरीत, आदर्शवादी मनुष्य वह है, जो इस बातसे अवगत नहीं है कि उसके भाव और उसकी कार्यप्रणालीमें क्या सम्बन्ध है और जिसके आचरण और उसके परिणाम स्वयं उससे ही छिपे रहते हैं। इसलिये मार्क्सकी इस परिभाषाके अनुसार जड़वादमे जिस बातपर जोर दिया जाता है, वह यह है कि मानव-जीवनमें क्रिया ही प्रधान वस्तु है और सब क्रियाएं वास्तव Material हैं। इस प्रकारका जड़वाद निम्न कोटिकी जीवन-प्रणालीका द्योतक नहीं है, वल्कि इस प्रकारके महन् जीवनका द्योतक है, जिसमें उच्च ज्ञान एवं जीवनके सम्बन्धमें गम्भीर रूपसे विचार करने और उसके महत्वकी उपलब्धि करनेकी प्रेरणा होती है। साधारण कोटिका आदर्शवादी जिस प्रकारके निःस्वाध-भाव एवं परिपूर्ण जीवनकी कल्पना भी नहीं कर सकता, उस प्रकारके निःस्वार्थ-भाव एवं परिपूर्ण जीवनके लिये इस जड़वादी जीवनमें आह्वान होता है।

मार्क्सके पूर्व दार्शनिकोंमें एक ओर भाववादी जिस प्रकार नूतनकी सृष्टि किसी दैवी-शक्ति द्वारा मानते थे, उसी प्रकार दूसरी ओर इसके विपरीत,जड़वादी यह कहा करते थे कि नूतनकी सृष्टि होती ही नहीं; भाववादी जिसे नूतन कहते हैं, वह पुरातनका अवस्थाविशेषमें प्राप्त हो जाना है; वस्तुतः नूतन कुछ भी नहीं है। किन्तु इस मतवादमें एक कठिनाई यह थी कि यदि

सजीव पदार्थ निर्जीव पदार्थकी अपेक्षा नूतन नहीं है, तो क्या कारण है कि एकमें जीवनीशक्ति हम पाते हैं और दूसरेमें नहीं ? और यदि नूतनकी सृष्टि हम मान लेते हैं तो जो था ही नहीं, उसकी सृष्टि किस प्रकार हुई ? इसलिये अवश्य ही किसी दैवीशक्तिकी प्रेरणासे नवीनकी सृष्टि सम्भव हो सकती है।

जड़वादात्मक दर्शनको इस सङ्कटसे बचानेके लिये ही जड़वादको Dialectics के ऊपर प्रतिष्ठित किया गया—अर्थात् दर्शन जगत्में Dialectical Materialsim की अवतारणा की गयी। मार्क्सने नूतनकी सृष्टि स्वीकार कर ली और यह बताया कि जड़वादको दृढ़ करनेके लिये Dialectics का आश्रय ग्रहण करना होगा। समस्त सृष्टिके मूलमें केवल निर्जीव पदार्थका अस्तित्व होनेपर भी सृष्टि-प्रणाली Evolution या साधारण क्रम-विकास द्वारा होती है। इस प्रकारका क्रम-विकास होते-होते एक असाधारण Revolution या विप्लव हो जाता है। इस असाधारणके साथ अपूर्वकी सृष्टि होती है; जो पहले नहीं था, उसका आगमन होता है। किन्तु इसके मूलमें कोई बाह्य या दैवीशक्ति नहीं होती। पदार्थकी अन्तर्निहित शक्तिके फलस्वरूप साधारण क्रम-विकास होते-होते एक असाधारण घटना सङ्घटित हो जाती है, एक नूतनका आविर्भाव हो जाता है। (Evolution) क्रम-विकासके मार्गसे जो यह (Revolution) विप्लव हो जाता है, उस गतिको ही Dia-

lectics कहते हैं। इस Dialectics के ऊपर जब (Materialism) जड़वाद की प्रतिष्ठा होती है, तभी जड़वादका मूल सुदृढ़ होता है। विप्लवी दर्शनमें इस जड़वाद को ही Dialectical Materialism अर्थात् परिवर्तनशील या गतिशील जड़वाद कहते हैं।

—·——

इतिहासकी वास्तव व्याख्या

मार्क्सके मतवादका दूसरा मूल सिद्धान्त है—इतिहासकी वास्तविक व्याख्या (Materialist interpretation of History)। मानव-समाजकी इतिहास-चर्चा करते हुए मार्क्सको इसका एक विशेष रूप दिखाई पड़ा। हेगेल आदि आदर्शवादियोंको मानव-जातिकी ऐतिहासिक घटनाओंमें एक समान धारा एवं एकता दिखाई पड़ती थी। इस एकताको वे भगवानकी इच्छा अथवा मनुष्यके किसी विशेष मनोभाव, चिन्ताधारा या प्रचेष्टामें खोजते थे। हेगेलके मतानुसार इतिहास आत्माकी स्वतन्त्रताकी ओर अग्रगति है। इस स्वतन्त्रताका आत्मचैतन्यमें ही सन्धान मिल सकता है। पूर्ण आत्मचैतन्य ईश्वर है। इसलिये इतिहास ईश्वरका ही आत्मचरित्र है। इसके विपरीत, मार्क्सको इतिहासका

मूलसूत्र धनोत्पादनके व्यापारमें, मनुष्यके साथ मनुष्यके सम्बन्धमें दिखाई पड़ा। यही सम्बन्ध समाजमें भिन्न-भिन्न श्रेणियोंका रूप ग्रहण करता है। जीवित रहनेके लिये आवश्यकीय वस्तुओंकी उत्पादन-प्रणाली द्वारा ही मनुष्य-जीवनके सामाजिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक कार्य नियन्त्रित होते हैं। मनुष्यकी विचारधारा द्वारा उसका अस्तित्व नियन्त्रित नहीं होता, सामाजिक अस्तित्व द्वारा ही उसकी विचारधारा नियन्त्रित होती है। समाजके लिये आवश्यकीय वस्तुओंकी उत्पादन-प्रणालीके विस्तार एवं परिपुष्टिके बीच एक ऐसी अवस्था आ उपस्थित होती है, जबकि उसकी विभिन्न धाराओंमें विरोध उत्पन्न हो जाता है। धन एवं पण्य उत्पादन करनेवाली शक्तियोंकी वृद्धि एवं परिवर्तनके फलस्वरूप पहलेके सम्बन्ध शिथिल होने लगते हैं। इसके बाद ही समाजमें विप्लव-युगका आविर्भाव होने लगता है।

इतिहासकी वास्तव व्याख्याका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य केवल व्यक्तिगत सुख-सुविधा प्राप्त करनेके उद्देश्य द्वारा परिचालित होता है। मार्क्सने यह कहीं नहीं कहा है कि केवल आर्थिक स्वार्थ द्वारा ही मानव-समाज नियन्त्रित होता है। उसने इतना ही कहा है कि आर्थिक स्वार्थ या आर्थिक सम्बन्धकी शक्ति इतनी अधिक होती है कि मानव सभ्यताके एक स्तरसे दूसरे स्तरमें उत्क्रमण करनेमें अधिकांश युक्तियां इसके पक्षमें ही पायी जाती हैं। इतिहासकी वास्तव या आर्थिक व्याख्याका असल मतलब यह है कि वस्तुओंका उत्पादन, और जिस सामाजिक अवस्थामें वस्तु

उत्पन्न होती है, उसीके ऊपर समाजकी नींव खड़ी की जाती है। समाजकी यह नींव या मूलाधार उसके मनके ऊपर जो प्रभाव डालता है, उससे ही उस समाजकी नीति, धर्म, दर्शन, कला आदि विषयोंमें धारणाएं निश्चित होती हैं। इसलिये वस्तु-उत्पादन व्यवस्थामें परिवर्तन होनेके साथ-साथ सामाजिक जीवन और उस समाजके मनोभावमें परिवर्तन होना आरम्भ होता है। मार्क्सने लिखा है :—"सामाजिक रूपमें वस्तु प्रस्तुत करते-करते मनुष्य कितने ही निर्दिष्ट उत्पादनगत सम्बन्धों (Productive relationship) के साथ आबद्ध हो जाता है। इसमें उसकी इच्छाका कोई स्थान नहीं होता। ये ही उत्पादनगत सम्बन्ध एक होकर समाजकी आर्थिक भित्तिकी रचना करते हैं और इस भित्तिके ऊपर ही राजनीति और कानून बनते हैं। मनुष्यके वास्तव जीवनकी उत्पादन-प्रणाली ही उसके सामाजिक, राजनीतिक एवं मानसिक जीवनकी सत्ताका निर्देश करती है। मनुष्यकी मनोवृत्ति उसके जीवनको निर्दिष्ट नहीं करती, बल्कि उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसके मनोभावको निर्दिष्ट करता है।"

किन्तु इसके बाद प्रश्न यह उठता है कि वस्तुकी उत्पादन-प्रणाली और मनुष्यके मनोभावमें परिवर्तन क्यों होता है ? इस प्रश्नके उत्तरमें मार्क्सने कहा है :—"जीवनके क्रमविकासके किसी विशेष समयमें समाजकी वस्तुमूलक उत्पादन-शक्तिके साथ उस समयके उत्पादनगत सम्बन्ध (अर्थात् उस समयकी उत्पादन-अवस्था और उस समयकी सम्पत्ति-व्यवस्था) का संघर्ष होता

है। पहलेकी उत्पादनशक्तिके साथ इन सब उत्पादन-अवस्थाओं का मेल था, किन्तु अब ये ही अवस्थाएं नूतन उत्पादनशक्तिके सामने बन्धनस्वरूप हो जाती हैं। तब सामाजिक विप्लव शुरू होता है। समाजकी आर्थिक भित्तिमें परिवर्तन होनेके साथ-साथ समाजकी मानसिक विचारधारा आदिमें भी थोड़ा-बहुत परिवर्तन द्रुतगतिसे होने लगता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्सके मतसे समाजके जितने नियम और विधि-विधान होते हैं, उन सबके मूलमें समाजकी सृजन या उत्पादनशक्ति ही काम करती है। यह शक्ति कहां कौनसा रूप ग्रहण करेगी, यह बहुत कुछ भौगोलिक अथवा प्राकृतिक परिस्थितियोंके ऊपर निर्भर करता है। उत्पादनशक्ति ही मनुष्य-मनुष्यके बीच एक आर्थिक सम्बन्ध स्थापित कर देती है, और बादमें इस आर्थिक सम्बन्धकी भित्ति करके समाज एवं राष्ट्र विशेष-विशेष रूप ग्रहण करते हैं। प्रति युगमें, यहांतक कि प्रति क्षणमें यह आर्थिक एवं सामाजिक भित्ति ही मनुष्यकी समस्त मनोवृत्ति, उसकी विचारधारा, उसकी कल्पना, उसकी ध्यानधारणा आदिको नियन्त्रित करती है। किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि मनुष्य स्वयं सर्वथा निःसहाय है, और इस Socio-economic Foundation के ऊपर भरोसा करके वह स्वयं सक्रिय एवं सचेष्ट नहीं बना रहे। मार्क्सने स्पष्ट रूपमें यह बात स्वीकार की है कि प्रकृति जिस तरह मनुष्यके ऊपर अपना प्रभाव डालती है, उसी प्रकार मनुष्य भी प्रकृतिके ऊपर प्रभाव डालकर

अपनी परिस्थितियोंमें बहुत कुछ हेर-फेर और परिवर्तन करनेमें समर्थ होता है, और इस प्रकार वह अप्रत्यक्ष या अज्ञात रूपमें अपनेको भी बहुत कुछ परिवर्तित कर देता है। मनुष्य और उसकी परिस्थिति परस्पर प्रभाव डालकर, एक-दूसरेके द्वारा प्रभावित होकर इतिहासके पृष्ठोंकी रचना करते आ रहे हैं। इसलिये इतिहास स्वयं कुछ नहीं करता। मनुष्य-प्रकृति, जीवन्त मनुष्य ही सब कुछ करता है। इतिहास अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये मनुष्य को साधन नहीं बनाता, बल्कि मनुष्य अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये जो कार्य करता है, उससे पृथक् इतिहास और कुछ नहीं है।

श्रेणी-संग्राम

मार्क्सके मतवादका दूसरा सिद्धान्त है श्रेणी-संग्राम (Class struggle)। मनुष्य और मनुष्यके बीच जो द्वन्द्व-विरोध देखे जाते हैं—विज्ञानसम्मत विश्लेषण द्वारा मार्क्सने उसके मूल कारणका आविष्कार किया है। श्रेणी-संघर्ष ही इन सब द्वन्द्व विरोधोंका मूल कारण है।

मानव-समाजकी प्रथम अवस्थामें श्रेणी-भेद नहीं था। उस समय समाजकी जैसी अवस्था थी, उसमें प्राकृतिक सम्पत्ति-साधनोंपर समग्र समाजका समान रूपमें भोग-अधिकार था। इसके बाद समाजमें जो लोग शक्तिशाली थे, वे एक-एक कर समाजके अधिपति बननेकी चेष्टा करने लगे। उस समय भी दास-प्रथामें एक मनुष्य द्वारा अपर मनुष्यका शोपण चलता था।

किन्तु वह शोषण वर्तमान समय जैसा व्यापक नहीं था। उस समयके शोषणने कच्चे और तैयार मालके व्यवसाय और आर्थिक शोषणका रूप धारण नहीं किया था। इसके बाद क्रमशः समाज-व्यवसायमें परिवर्तन होनेके साथ-साथ प्राचीन कालकी साम्य-वादी समाज-व्यवस्थामें दास एवं सामन्त प्रथाका और उसके बाद आर्थिक शोषण-व्यवसायका समाजके अन्दर प्रवेश हुआ। "जिसकी लाठी उसकी भैंस"—इस नीतिने समाजकी एक श्रेणीको शक्तिशाली और दूसरी श्रेणीको निर्बल बना दिया। प्रकृतिके भण्डारमें जो कुछ सम्पत्ति थी, उसपर अधिकार करनेके लिये उस समय जो साधन और उपाय उपलब्ध थे, उनके द्वारा ही उस समय शोषण-कार्य चलता था। इस प्रकार एक दल मनुष्य-समाज के अधिपति बनकर रहने लगे, और उन्होंने अपनेमें एक श्रेणीको समाजका शासन करनेके लिये तैयार किया। इसके बाद इन मुट्ठीभर शोषक अधिपतियोंके विरुद्ध उस समयके बहुसंख्यक शोषित समाजने संग्राम किया। उन्होंने शासनकी क्षमता छीनकर सभ्यताके साथ-साथ विज्ञान एवं वाणिज्यका विस्तार किया। अब शोषित समाजकी उस श्रेणीने—जिसने शासन-क्षमता प्राप्त की थी—अपनी शक्तिको सुदृढ़ करनेके लिये बहुसंख्यक लोगोंकी मांगोंकी उपेक्षा की। किन्तु समाजके अधिपतियोंके साथ संग्राम करनेमें सबने एक साथ मिलकर शोषित श्रेणीके रूपमें संग्राममें भाग लिया था। इस प्रकार सामन्त प्रथा (Feudalism) से

वर्तमान बुर्जुआ या धनिक प्रथाका आविर्भाव हुआ। बुर्जुआ श्रेणी वह है, जिसने सामन्तशाहीके विरुद्ध संग्राम करने और उसका उच्छेद साधन करनेमें शोषितोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाया था और बादमें क्षमता प्राप्त करके बहुसंख्यक शोषितोंकी उपेक्षा कर दी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिम कालके साम्यवादी-समाजके लुप्त होनेके बादसे ही मानव-समाज दो परस्पर-विरुद्ध श्रेणी या दलमें विभक्त हो गया। उनमें एक दलका धन-उत्पादनके समस्त साधनोंपर अधिकार हो गया और उसके इस अधिकार या मालिकाना हकको कायम रखनेके लिये जो शासन-व्यवस्था कायम हुई, उसपर भी उसीका अधिकार कायम हुआ। यही दल वर्तमान समाजका शासक-दल बना हुआ है। मार्क्सकी भाषामें यही बुर्जुआ दल है। समाजकी जो साधारण श्रेणी है, उसमें केवल परिश्रम करनेकी क्षमता एवं दक्षता है। यह श्रेणी सर्वहारा श्रमिक-दल है।

मार्क्सका कहना है कि उत्पादन-व्यवस्था और उत्पादन-शक्तिके बीच जो घात-प्रतिघात चलते रहते हैं, उसीके परिणाम-स्वरूप समाजका क्रमविकास भी होता है। उत्पादन-व्यवस्था और उत्पादनशक्तिके बीच घात-प्रतिघात होते रहनेके फलस्वरूप समाजमें दो विरुद्ध श्रेणियोंका उद्भव होता है और इन दो विरुद्ध श्रेणियोंके संघर्षसे ही युग-युगमें नूतन सभ्यताकी सृष्टि होती है।

मार्क्सके मतसे पाश्चात्य सभ्यताका क्रमविकास इस श्रेणी-संघर्षका ही परिणाम है। सामन्त-प्रथासे पूंजीवादकी सृष्टि हुई और इस पूंजीवादके अन्दर ही साम्यवादकी सृष्टिक्रिया चल रही है। धनिक और श्रमजीवी दलने किसी समय एक साथ होकर धर्मपुरोहित और सामन्तोंके विरुद्ध संग्राम चलाया था। जब धनतन्त्र विजयी होकर समाजमें प्रतिष्ठित हुआ तो श्रमिक-संघ उससे पृथक् होने लगा। मार्क्सने लिखा है कि परस्पर-विपरीत क्रियाशील वास्तवश्रेणीके सन्धानसे समाज नूतन भावमें संस्कृत होकर आगे बढ़ता है और जभी कोई श्रेणी समाजकी इस अग्रगतिमें बाधक बनकर उपस्थित होती है तो उसकी पराजय अवश्यम्भावी होती है। धनतन्त्रवाद समाजवादकी अपेक्षा श्रेष्ठ संस्कार समाजमें लाया था; किन्तु जब उसका दान समाप्त हो रहा है तो उसे पीछे छोड़कर आगे बढ़ना होगा; इसमें किसी प्रकारकी मोह-ममता या दुर्बलता दिखानेसे काम नहीं चलेगा।

मार्क्सने लिखा है—"समाजमें अतीत कालमें और वर्तमानमें जो असाम्य एवं अन्याय थे और हैं, श्रेणी-विभाग ही उनका मूल कारण है। वर्तमान युगमें सर्वहारा श्रमजीवी श्रेणीकी जो सृष्टि हो गयी है, उसके एकाधिपत्य लाभ करनेपर ही श्रेणी-विभागका लोप हो सकता है। श्रेणीहीन समाजमें सब प्रकारके शोपण एवं शासनका अन्त हो जायगा, उस समय मनुष्य किसीका दास बनकर नहीं रहेगा; आर्थिक शक्तियां मनुष्यके इतिहासको नियन्त्रित नहीं करेंगी, मनुष्य स्वयं ही अपने इति-

ह्रासको नियन्त्रित करेगा। मनुष्य उस समय अदृष्टका दास होकर नहीं रहेगा, वह अदृष्ट या नियतिका प्रभू बन जायगा।"

मार्क्सके मतवादमें श्रेणी-संग्रामको एक प्रमुख सिद्धान्तके रूपमें माना जाता है सही, किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि यह मार्क्सका कोई मौलिक सिद्धान्त है। मार्क्सने सन् १८५२ ई० में अपने एक पत्रमें वेडमेयरको लिखा था—"जहांतक मेरा सम्बन्ध है, वर्तमान समाजमें श्रेणी-भेद तथा श्रेणी-संघर्षके अस्तित्वका पता लगानेका श्रेय मुझे नहीं है। धनिक वर्गके ऐतिहासिकोंने मुझसे बहुत पहले ही इस श्रेणी-संघर्षके ऐतिहासिक विकासका प्रतिपादन किया था। इस विषयमें मैंने जो कुछ किया है वह इतना ही है कि—(१) इस श्रेणी-भेदका सम्बन्ध उत्पादन-प्रणालीके परिणामस्वरूप कतिपय ऐतिहासिक संग्रामोंके साथ है; (२) श्रेणी-सङ्घर्षका अवश्यम्भावी परिणाम सर्वहारा मजदूर वर्गका अधिनायकत्व है; (३) और यह अधिनायकत्व भी तभीतकके लिये है, जबतक कि समस्त श्रेणी-भेदका लोप होकर श्रेणीहीन समाजकी स्थापना नहीं हो जाती।" इसलिये श्रेणी-सङ्घर्षके सिद्धान्तकी उद्भावना मार्क्स द्वारा न होकर उसके पूर्ववर्ती दार्शनिकों द्वारा हुई थी और धनिक समाजके दार्शनिकोंने इसके अस्तित्वको स्पष्ट रूपमें स्वीकार भी किया था। इसलिये मार्क्सके मतवादमें केवल श्रेणी-भेदके अस्तित्वको मान लेनेसे ही कोई मार्क्सवादी नहीं हो सकता। यहांतक मान लेना तो धनिक वर्गके दार्शनिकोंकी राजनीति एवं युक्ति-प्रणालीतक ही अपने दृष्टिकोणको

सीमाबद्ध रखना है। मार्क्सवादी वह है, जो श्रेणी-भेदके अस्तित्व को समाजके अन्दर केवल स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि इसके साथ-साथ सर्वहारा श्रमिक वर्गके अधिनायकत्व (Dictatorship of the proletariat) को भी स्वीकार करता है। मार्क्सवादी और दूसरे साधारण या बड़े बुर्जुआमें यही बहुत बड़ा भेद है।

श्रेणी-सङ्घर्षके सम्बन्धमें कम्यूनिस्टोंका कहना है—"समाजमें धनोत्पादनके जितने साधन हैं, उन सबपर मुट्ठीभर धनिकोंका अधिकार है। ये मुट्ठीभर धनवान या पंजीपति अपने स्वार्थपर दृष्टि रखकर धनकी सृष्टि करते हैं। समाजकी प्रत्येक नर-नारी सम्पत्तिके प्राचुर्य्यका अधिकारी हो, यह उनका आदर्श नहीं होता। धन सञ्चय करनेका लोभ इनमें अत्यन्त प्रवल होता है। इनकी सम्पत्तिका परिमाण एक ओर जिस प्रकार बढ़ता जाता है, दूसरी ओर करोड़ों मनुष्योंका दुःख-दारिद्र्य भी उसी प्रकार बढ़ता जाता है। धनिक वर्ग बैंकोंमें अपना धन जमा रखता है और निश्चिन्त होकर जीवनके समस्त सुखोंका उपभोग करता है। उसे अपने लिये तथा अपने परिवारके लिये कलकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। उसके पास आवश्यकतासे अधिक धन सञ्चित है, जिससे वह स्वयं जिन्दगीभर सुखपूर्वक निर्वाह कर सकता है और अपने बाद अपनी सन्तानके लिये भी पर्याप्त धन छोड़ जा सकता है। यह दल दूसरोंके परिश्रमपर चैनसे जिन्दगी बसर करता है। इसके विपरीत, श्रमिक दल—जिसकी संख्या अत्यधिक होती है—

एकमात्र अपने परिश्रम द्वारा अर्जित धनपर निर्भर करता है, किन्तु उसके इस परिश्रमका मालिक कोई दूसरा ही होता है। उसके परिश्रमका क्या मूल्य होना चाहिये, और परिश्रम द्वारा उत्पादित धनका कितना भाग उसे मिलना चाहिये और कितना भाग उसके मालिकको, इसका निर्णय भी वह मालिक ही करता है। यह दल अपने परिश्रमको बेचकर अपना जीवन निर्वाह करता है, और उसके इस परिश्रमका खरीदार होता है उसका मालिक पूंजीपति। चूंकि पूंजीपतिके हाथमें सम्पत्तिके साधन हैं, बैंकोंमें सञ्चित धन है, इसलिये वह जब चाहे तब श्रमिक दलके परिश्रमको खरीदनेसे इनकार कर सकता है। और चूंकि श्रमिक दलके हाथमें किसी प्रकारकी पूंजी नहीं है, वह सर्वहारा है, इसलिये उसे मजबूर होकर अपना पेट पालनेके लिये अपना परिश्रम बेच देना और उस परिश्रमका मूल्य मालिककी मर्जीपर छोड़ देना पड़ता है। इस प्रकार समाजकी इन दो श्रेणियोंमें जो शाश्वत विरोध है, उसका अन्त तभी हो सकता है, जबकि एकके ऊपर दूसरेकी सम्पूर्ण विजय हो जाय; क्योंकि श्रमजीवी अपने श्रमका अधिकसे अधिक मूल्य चाहेंगे और पूंजीपति उनके श्रमको कमसे कम मूल्यमें खरीदना चाहेंगे, जिससे वे अपने कारबारमें लाभ उठाकर बैंकोंमें रुपया जमा कर सकें; जमीन-जायदाद या शेयर खरीदकर धनवान बन सकें। पूंजीपति और मजदूरोंका यह पारस्परिक सम्बन्ध एकके हाथमें दूसरेके शोषणका जबर्दस्त साधन प्रदान करता है। अतएव इस साधनका अन्त तभी हो सकता है, जबकि इस

सम्बन्धका ही अन्त कर दिया जाय। और इसके लिये यह आवश्यक है कि सम्पत्तिके साधनोंपर व्यक्तिका नहीं, सम्पूर्ण समाजका स्वामित्व हो। ऐसा होनेसे ही समाजमें किसी प्रकारका श्रेणी-भेद नहीं रह जायगा। किन्तु इस प्रकारके समाजकी प्रतिष्ठामें प्रधान बाधक है धनिकवर्ग। धनिकवर्ग सङ्घबद्ध एवं क्षमताशाली है। कल-कारखाना, जमीन, खान, बैंक आदिपर अधिकार होनेके कारण वह श्रमजीवियोंको विवश कर सकता है। वह वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाको अक्षुण्ण रखना चाहता है। उसकी पीठपर सरकारकी सत्ता है। उसकी क्षमताके संकेतपर ही देशका शासन होता है। वह अपनी इस क्षमताका उपयोग अपने हितोंकी रक्षाके लिये कानून बनवानेमें कर सकता है। यदि उसके अधिकारोंपर आक्रमण होता है, तो वह आक्रमण करनेवालोंको राजद्रोही साबित करके उन्हें कानूनके अनुसार दण्ड दिलवाता है। शिक्षा, न्याय, नीति, धर्म—सब कुछ उसके स्वार्थोंकी रक्षाके लिये है। स्वेच्छासे वह अपने अधिकारों एवं विशेष सुविधाओंका त्याग करना नहीं चाहता; स्वेच्छासे स्वार्थ-त्याग करना मनुष्यका स्वभाव नहीं है। इतिहासमें इस प्रकारके दृष्टान्त हमें विरले ही मिलते हैं। Voluntarly abdication from special privilege has been the exception and not the rule in history.* मनुष्य यदि स्वेच्छासे अपने स्वार्थका परित्याग कर सकता, तो मानव-सभ्यताके इतिहासमें हमें बार-बार विप्लवके

* A Grammar of Politics by Harold J. Lasky.

दर्शन नहीं होते। वह अपनी कामनाओंका परित्याग करनेकी अपेक्षा दूसरों द्वारा किये गये आत्मोत्सर्गको ही पसन्द करता है। भोग-विलासमें लिपटे रहना उसके लिये स्वाभाविक है। किन्तु जो दल इन सब अधिकारों एवं सुखोपभोगोंसे वंचित है, वह इनमें भाग लेना चाहता है; और उसकी यह भाग लेनेकी इच्छा ही श्रेणी-संग्रामकी उत्पत्तिका कारण है। इस संग्राममें समझौतेके लिये कोई स्थान नहीं हो सकता; क्योंकि दोनों श्रेणियोंके बीच इतना रिक्त स्थान (Margin) नहीं बच जाता, जिससे धनीवर्ग श्रमजीवियोंके प्रति कुछ रियायतें करते हुए भी अपने आधिपत्य-को अक्षुण्ण रख सके। जैसा कि मार्क्सने लिखा है:—"श्रम-जीवियोंको छोटे-मोटे सुधारोंसे सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये। उन्हें साहस एवं आत्मविश्वासके अभावमें उन धनिक श्रेणीके विचारकों एवं राजनीतिज्ञोंकी न्याय-बुद्धिपर भरोसा नहीं करना चाहिये, जो उनके दुःख एवं अभावोंपर समवेदना प्रकट करते हैं। उन्हें श्रेणी-सङ्घर्षकी कटुताको कम करनेकी ओर नहीं, बल्कि उसे बढ़ानेकी ओर ध्यान देना चाहिये। (They must seek, not the mitigation, but the exacerbation of the class-struggle) क्योंकि श्रेणी-संग्राम द्वारा ही श्रमजीवियोंका अधि-नायकत्व स्थापित हो सकता है; और यह अधिनायक-तन्त्र तभीतकके लिये आवश्यक है, जबतक कि समाजमें सब प्रकार के श्रेणी-भेद का अन्त नहीं हो जाता।" श्रेणी-रहित समाजमें न तो कोई श्रेणी रह जायगी और

न किसी श्रेणी-विशेषका आधिपत्य ही रह जायगा। इस प्रकार साम्यवादी समाजमें श्रमजीवियोंकी सम्पूर्ण सत्ता स्थापित करनेके लिये श्रेणी-संघर्षकी आवश्यकतापर जोर देते हैं सही, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि श्रमजीवियोंकी यह डिक्टेटरी सदाके लिये कायम रह जायगी। यह तो परिवर्तन कालके लिये ही आवश्यक है। जब समाजमें समस्त श्रेणियोंका लोप हो जायगा, तब सब लोग—जो शरीर और मन-बुद्धिसे सक्षम होंगे—श्रमजीवी बन जायंगे और उस समय देशका शासन श्रमजीवियों द्वारा नहीं, बल्कि समग्र समाज द्वारा होगा, और इस प्रकारका शासन ही वास्तविक जनसत्तात्मक शासन कहा जा सकता है। इस शासनमें दिमागी काम करनेवालों और शारीरिक परिश्रम करनेवालोंमें कोई विरोध नहीं रह जायगा। परिश्रम बाजारमें बिकनेवाली कोई चीज-जैसा नहीं रह जायगा, जिसे उदर-पालनके लिये लोगोंको बाध्य होकर बेच देना पड़े। समाज जब इस स्थितिमें पहुंच जायगा, उस समय सरकारकी आवश्यकता आपसे आप मिट जायगी।

पूंजीवादी अर्थनीति

इङ्गलैण्ड और अमेरिकाके लोग माल उत्पन्न करनेकी जिस व्यवस्थाके अन्दर वास करते हैं, उस व्यवस्थाको ही पूंजीवाद या पूंजीवादमूलक आर्थिक व्यवस्था कहते हैं। इस व्यवस्थाके अन्दर द्रव्य या पण्य (Commodity) उत्पन्न करनेके जितने साधन हैं—जमीन, खान, जंगल, रेल, जहाज, बैंक, कल-कारखाना—सबपर समाजके मुट्ठीभर लोगोंका मालिकाना हक होता है। (By the word Capitalism we mean an economic system under which the fields, factories and mines are owned by individuals and groups of individuals) कल-कारखानोंमें जो माल तैयार होते हैं, उनपर उनके मालिकोंकी लोलुप दृष्टि गड़ी रहती है और तैयार माल बेचकर

अधिकसे अधिक लाभ हो, यह उनका प्रधान लक्ष्य होता है। कल-कारखानोंमें ढेरके ढेर माल तैयार होते हैं; किन्तु यह स्पष्ट है कि उनके मालिक या उनके परिवारके लोग उन सब मालका स्वयं उपयोग नहीं कर सकते। इसलिये इस प्रकारके मालको बाजारमें बिक्रीके लिये भेजा जाता है और यही माल, जो उसके बनानेवालेके काममें नहीं आता, पण्य (Commodity) कहा जाता है। किन्तु जमीन, खान या कल-कारखानोंमें जो लोग वास्तवमें माल उत्पन्न करते हैं, वे उनके मालिक नहीं होते; बल्कि वे मजदूर कहे जाते हैं। माल उत्पन्न करनेवाले इन मजदूरोंका मालपर या माल उत्पन्न करनेके साधनोंपर किसी प्रकारका भी स्वत्व नहीं होता। इनका एकमात्र कार्य होता है मालिकोंके लिये लाभकी सृष्टि करना। जिन लोगोंके पास कोई कल-कांटा या माल उत्पन्न करनेका कोई अन्य साधन नहीं होता, और जो लोग अपनी श्रमशक्तिको बेचकर अपना पेट पालते हैं, वे मजदूर-वर्ग बनकर इन कल-कारखानोंमें मजदूरोंपर काम करते हैं; सर्वथा अकिञ्चन होनेके कारण अपनी श्रमशक्तिको बेचकर अपना पेट पालनेके लिये इन्हें मजबूर होना पड़ता है। कल-कारखानोंकी वृद्धि होनेके साथ-साथ इनकी संख्या बढ़ती गयी है और इस प्रकारके लोग ही वर्तमान समाजमें कोटि-कोटि सर्वहारा मजदूर-वर्ग (Proletariat) में परिणत हो गये हैं। इस सर्वहारा मजदूर-वर्गकी श्रमशक्ति (Labour power) भी एक प्रकारका पण्य ही बन जाती है। कारण, इसे पूंजीपतियोंके निकट अपनी श्रम-

शक्तिको वेचना पड़ता है। अगर यह ऐसा न करे तो भूखों मर जाय।

पूंजीपति और मजदूर वर्गके स्वार्थ परस्पर-विरोधी होते हैं। पूंजीपति मुनाफाको लक्ष्य रख करके ही कार्य करता है; इसलिये स्वार्थ-सिद्धिके लिये वह मजदूरोंसे अधिकसे अधिक काम लेनेकी चेष्टामें लगा रहता है। वह मजदूरोंकी श्रमशक्तिका पूरा मूल्य नहीं देता; यदि पूरा मूल्य दे तो फिर उसे लाभ कहांसे हो? पूंजीपति और मजदूर, दोनों ही मालिकके रूपमें अपना-अपना पण्य वाजारमें लेकर आते हैं। एकका पण्य होता है धन, और दूसरेका होता है श्रमशक्ति। श्रमशक्तिको वेचकर मजदूरको जो धन मिलता है, उसे वह इच्छानुसार खर्च कर सकता है, और इसके वदलेमें पूंजीपति उस श्रमशक्तिको अपने व्यवहारमें लगा सकता है। किन्तु पूंजीपति जिस रूपमें उस श्रमशक्तिको अपने काममें लाता है, उससे कारखानेके मजदूरोंको वेतनके अतिरिक्त भी कार्य करनेके लिये वाध्य होना पड़ता है। मान लीजिये कि किसी कारखानेमें एक मजदूरको रोजाना मजदूरी १२ आने मिलती है। इस मजदूरीके हिसावसे उसे रोजाना ६ घण्टेसे ज्यादा काम नहीं करना चाहिये। किन्तु पूंजीपति मजदूरसे ६ घण्टेके वदले १० घण्टे काम कराता है और इस अतिरिक्त ४ घण्टेका उसे कुछ भी वेतन नहीं मिलता। ऐसी स्थितिमें ६ घण्टेसे अधिक उस मजदूरसे जितना काम कराया जायगा, उसकी श्रमशक्तिके मूल्यसे उतना ही अधिक मूल्यका माल तैयार किया जायगा। इस प्रकार मूल्यके अतिरिक्त श्रमशक्तिका

जो व्यवहार होता है—अर्थात् ६ घण्टेके वदले १० घण्टे—इस चार घण्टेके मूल्यका लाभ बिलकुल पूजीपतिकी जेबमें चला जाता है। इस मूल्यको ही अतिरिक्त मूल्य (Surplus value) कहते हैं।

लेनिनने इस अतिरिक्त मूल्यकी व्याख्या इस प्रकार की है :—"जमीन, कल-कारखाना और उत्पादनके साधनोंके लिये मालिकके निकट मजदूर अपनी श्रमशक्तिको बेचता है। अपना तथा अपने परिवारका भरण-पोषण करनेके लिये मजदूरको अपने कार्यकाल (Working day) का सिर्फ एक हिस्सा बिताना पड़ता है; बाकी समयमें जो वह काम करता है, उसका उसे कुछ भी वेतन नहीं मिलता। इस अतिरिक्त समयमें वह पूजीपतिके लिये अतिरिक्त मूल्य (Surplus value) की सृष्टि करता है और इस अतिरिक्त मूल्यकी बदौलत ही पूजीपति दिन-दिन धनवान बनता जाता है।"

इस प्रकार उत्पादनके साधनोंका मालिक होनेके कारण पूजी-पति श्रमिकोंके श्रमको हड़प कर अपने लिये मुनाफा करता है। धनतान्त्रिक समाजमें इसी रूपमें पूंजीपतियों द्वारा सर्वहाराका शोषण होता है। (Capitalist exploitation is the appropriation by the bourgeoisie of the surplus value created by the proletariat.)

पूंजीवादमूलक अर्थनैतिक व्यवस्थामें माल उत्पन्न करनेकी जो प्रणाली है, उसमें मूलगत विरोध है। समाजमें सब लोग मिलकर जिन चीजोंको उत्पन्न करते हैं, माल उत्पन्न करनेकी

प्रणालीके मालिक उन्हें हड़प लेते हैं। यन्त्रोंकी उन्नति और बड़े-बड़े कल-कारखानोंमें हजारों मजदूरोंके एकत्र समावेशके फलस्वरूप उत्पादन-प्रणालीका समाजतान्त्रिक रूप स्पष्ट ही समझा जाता है। किन्तु इसके साथ-साथ हम सम्पत्तिपर व्यक्तिविशेषका मालिकाना हक भी देखते हैं। बड़े-बड़े आधुनिक कारखाने भी उसी प्रकार व्यक्तिगत सम्पत्ति हो रहे हैं, जिस प्रकार मध्य-युगमें बढ़ई, लोहार आदि कारीगरोंके छोटे-छोटे कारखाने व्यक्तिगत सम्पत्ति थे। समाज द्वारा जो सम्पत्ति उत्पन्न होती है, उसके मूलमें समाजकी समस्त श्रेणियोंका श्रम होता है। किसी एक विभागके श्रमको लेकर समाज चल नहीं सकता। सब प्रकारके सम्मिलित श्रमकी शक्ति ही समाजके अभावोंकी पूर्ति कर सकती है। किन्तु पूंजीवादी समाज-व्यवस्थामें समाजके इस सम्मिलित-श्रम (Social labour) का लाभ समग्र समाजको न होकर पूंजीपतिको होता है। पूंजीवादका यही सबसे बड़ा वैषम्य (Contradiction) है। इस वैषम्यके कारण ही समाजके अन्दर धनिक और सर्वहारा—इन दो श्रेणियोंकी सृष्टि हो गयी है, जिनके स्वार्थ परस्पर-विरोधी हैं। पूंजीपति और मजदूर—इन दो श्रेणियोंके आर्थिक स्वार्थ कभी एक हो ही नहीं सकते। कारण, मुनाफा कम लेनेपर मजदूरी अधिक देनी पड़ेगी, और मजदूरी कम देनेपर मुनाफा बढ़ेगा—पूंजीवादका यह एक साधारण सिद्धान्त है।

मार्क्सके मतसे धनतन्त्रवाद (Capitalism) में मजदूरोंके श्रमको खरीदनेकी जो यह रीति है, वह अतीत युगकी दास-प्रथासे

किसी प्रकार भी भिन्न नहीं है। पहलेके दास अपनी कार्यशक्तिको आजीवनके लिये बेच देते थे, और आजके मजदूर अपनी उस शक्तिको दिनके हिसाबसे बेचते हैं। समाजवादियोंका कहना है कि व्यवसाय-क्षेत्रमें मालिक और मजदूरोंके बीच केवल मजदूरी के लेन-देनका सम्बन्ध होनेसे मजदूरोंमें दायित्वबोध उत्पन्न होने नहीं पाता। व्यवसायमें उन्नति हो, इस भावनासे प्रेरित होकर वे काम नहीं करते। कारखानेमें जो माल तैयार होता है, वह उत्तम कोटिका हो, इसके लिये भी उनमें विशेष उत्साह नहीं देखा जाता। क्रमशः मशीन चलानेमें अभ्यस्त होते-होते वे स्वयं यन्त्र द्वारा चालित होकर उस यन्त्रका ही एक अंश बन गये हैं, समाजके बहुसंख्यक कर्मियोंकी मानसिक एवं आत्मिक शक्तियों का इस प्रकार जो क्षय हो रहा है, वह जातिकी संस्कृतिके लिये अत्यन्त अनिष्टजनक है। मजदूरोंके मनमें यह भावना उत्पन्न कर देनी होगी कि उनके परिश्रम एवं कार्यकुशलतासे ही उत्तम माल तैयार हो सकते हैं। वे जो माल तैयार करते हैं, उससे वे अपना ही नहीं, बल्कि सारे समाजका हितसाधन करते हैं। उन्हें यह बता देना होगा कि उनकी ही सेवा और परिश्रमकी बदौलत समाज नाना प्रकारकी सुख-शान्ति और आरामका उपभोग करनेमें समर्थ हो रहा है।

पूंजीवादी प्रथा द्वारा पण्य-उत्पादनकी जो यह प्रणाली है उसकी एक और विलक्षणता यह है कि कोई भी कारखानेका मालिक यह जान नहीं सकता कि उसके कारखानेमें जो माल

तैयार होता है, वह कहांतक बाजारमें पहुंच सकेगा, और उसकी कितनी खपत हो सकेगी। उसके मालका कोई ग्राहक होगा या नहीं; मालका लागत-खर्च भी मालकी बिक्रीसे निकल आयगा कि नहीं, या मालकी कुछ भी बिक्री होगी या नहीं, इस सम्बन्धमें भी कोई ठीक-ठीक नहीं बता सकता। इस प्रकार उत्पादन-प्रणालीमें ही एक विशृङ्खलता छायी रहती है, जिससे प्रत्येक पूंजीपति इस बातकी चेष्टामें लगा रहता है कि वह किस प्रकार अपने प्रतिद्वन्द्वी को छल-बल आदि उपायों द्वारा परास्त करने या उसे बाजारसे खदेड़ देनेमें समर्थ हो सकता है। बड़े-बड़े व्यवसायी छोटे-छोटे व्यवसायोंको नष्ट करके अपना माल अधिक परिमाणमें बेचने और इसके फलस्वरूप अधिक मुनाफा उठानेके लिये बराबर सचेष्ट रहते हैं। व्यवसाय-क्षेत्रमें यह जो प्रतिद्वन्द्विता संग्राम चलता है, उसमें छोटे-छोटे व्यवसायियोंके लिये टिके रहना असम्भव हो जाता है। इसलिये जमीन या कारखानेका मालिक जितना ही बड़ा होगा, उसके लिये उतना ही सस्ता माल उत्पन्न करनेकी सुविधा होगी।

पूंजीपतियोंका आपसका यह जो द्वेषभाव है, बाजारपर एकाधिपत्य स्थापित करनेकी यह जो चेष्टा है, अपने प्रतिद्वन्द्वीको बाजारसे खदेड़ देनेका यह जो संग्रामपूर्ण प्रयास है—पूंजीवादी अर्थनीतिमें इसीका नाम प्रतियोगिता या Competition है। क्या बड़े-बड़े सम्मिलित कारबार, क्या पूजीपतियोंकी समवाय-मण्डली (Syndicate), कोई भी इस ध्वंसमूलक प्रतियोगितासे

बचनेमें समर्थ नहीं होता।

पूँजीवादी पण्य-उत्पादन प्रणालीमें इस प्रकार प्रतियोगिता होते रहनेका एक परिणाम यह होता है कि पूँजीपति लाभपर दृष्टि रखकर ही माल तैयार करता है। वह ऐसे मालको ही तैयार करना चाहेगा, जिससे मुनाफा हो। यह मुनाफा ही इस बातका निर्णय करेगा कि क्या उत्पन्न करना होगा, और कितना उत्पन्न करना होगा। जिन वस्तुओंकी खपत अधिक हो सकेगी, उन्हें तैयार करना ही लाभजनक समझा जाता है। जिन वस्तुओंकी मांग कम होगी, उन्हे तैयार करना लाभजनक नहीं समझा जाता। पैदावार और खपतके बीच किसी प्रकारका सामंजस्य नहीं होनेके कारण ही आज हम पूँजीवादी समाज-व्यवस्थामें यह विचित्र बात देख रहे हैं कि एक ओर तो खाद्य-पदार्थोंकी प्रचुरता होती है, और दूसरी ओर इस प्रचुरताके होते हुए भी बहुतसे लोगोंको भरपेट भोजन नहीं मिलता। पहले लोगोंको वस्तुओंके यथेष्ट अभावके कारण कष्ट भोगना पड़ता था, और आज वस्तुओंका अधिक उत्पादन या प्रचुरता होनेपर भी लोगोंको कष्ट भोगना पड़ रहा है। इसको कहते हैं—"पानीमें मीन प्यासी।" इसका कारण क्या है? कारण यह है कि पूँजीपति लाभ चाहता है। माल अधिक तैयार होनेपर सस्ता हो जायगा, इसलिये ज्यों ही मालका अधिक परिमाणमें तैयार होना आरम्भ होता है, त्यों ही पूँजीपति एक ओर तो कारखानेमें कामके घंटे कम करके मजदूरोंकी

छँटाई शुरू कर देता है, और दूसरी ओर तैयार मालको गोदामोंमें भरने लगता है। तैयार मालको बाजारमें भेजनेसे मांग कम होनेके कारण वह सस्ते भावमें बिकेगा। इसलिये माल बाजारमें भेजा नहीं जाता या नष्ट कर दिया जाता है। जिस समय देशमें लाखों मनुष्योंको भरपेट भोजन नहीं मिलता, ठीक उसी समय पूंजीपति अपने मालकी खपत बढ़ानेके लिये करोड़ों मन गेहूंको जलाकर नष्ट कर डालता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्थामें संकटके समय क्या अवस्था होती है, यह अमेरिकाकी खानोंके मजदूरोंकी जीवन-प्रणालीके निम्नलिखित वर्णनसे स्पष्ट हो जायगा—

कोयलेकी खानमें काम करनेवाले एक मजदूरका लड़का अपनी मांसे पूछता है—"मां, यह तो बताओ कि तुम घरमें आग क्यों नहीं जला रही हो? आज तो बड़ी सर्दी है।"

मांने उत्तर दिया—"घरमें कोयला कहां है? तुम्हारे पिता कोई काम नहीं मिलनेके कारण इस समय बेकार हो रहे हैं, इसीलिये हमारे पास पैसे नहीं हैं।"

लड़का बोला—"बाबूजी बेकार क्यों बैठे हैं, मां?"

मांने कहा—"कोयला बहुत ज्यादा तैयार हो रहा है, इसीलिये।"

मजदूरका लड़का सर्दीसे कांप रहा है—इसीलिये कि उसके घरमें आग जलानेके लिये कोयला नहीं है; और कोयला इसलिये नहीं है कि, उसके पिताको कोई काम नहीं मिलनेके कारण घरमें पैसे नहीं हैं; और बेकार होनेका कारण यह है कि कोयला बहुत ज्यादा परिमाणमें उत्पन्न हो रहा है। कोयला बहुत ज्यादा तैयार

हो रहा है, इसलिये लोग कोयलेके अभावमें सर्दीसे काप रहे हैं! गेहूं बहुत ज्यादा पैदा होता है, इसलिये लोग रोटीके अभावमें भूखों मर रहे हैं! इस प्रकारकी विलक्षण अवस्था संसारमें और पहले कभी नहीं देखी गयी थी।

यह पहले ही कह आये हैं कि पूंजीपति वाणिज्य-संकटसे बचनेके लिये तैयार मालको नष्ट करने और अपने मालकी खपतके लिये नये-नये बाजारोंपर दखल जमानेकी चेष्टा करता है। किन्तु इसके बाद जो संकट उसके सामने उपस्थित होता है, वह पहले संकटसे भी बड़ा होता है। इस संकटका क्षेत्र और भी व्यापक होता है, और इससे उद्धार पाना उसके लिये असम्भव हो जाता है। जब एक-एक देशके पूंजीपति संघबद्ध होकर अपने देशके बाजारपर अपना दखल पूरा-पूरा जमा लेते हैं तो वे अपना मूलधन काममें लगाने और अपने मालकी खपतके लिये अपने देशसे बाहर अपनी दृष्टि दौड़ाते हैं। किन्तु इस समयतक विभिन्न देशोंके बाजारपर किसी-न-किसी देशके पूंजीपतियोंका अधिकार हो गया रहता है। ऐसी स्थितिमें अपने देशमें वाणिज्य-संकट उपस्थित होनेकी जो आशंका होती है, उस आशंकाको टालनेके लिये युद्ध करके दूसरे देशोंके अधिकृत बाजारोंपर दखल जमानेकी चेष्टा देखी जाती है। इसका अवश्यम्भावी परिणाम होता है युद्ध। किन्तु युद्ध हो जानेपर भी इस संकटका सदाके लिये अवसान नहीं हो जाता। गत यूरोपीय महायुद्धके समाप्त हो जानेपर आज फिर यह संकट उपस्थित हो गया है, और इस संकटसे बचनेके

लिये ही फैसिस्ट राष्ट्र युद्धका आयोजन पूर्ण शक्तिके साथ कर रहे हैं। इसलिये इस संकटका अन्त सदाके लिये तभी हो सकता है, जबकि पण्य-उत्पादन करनेके जितने बड़े-बड़े साधन हैं, उन सबपर पूजीपतियोंका मालिकाना हक न होकर सम्पूर्ण समाजका नियंत्रण हो—जमीन, खान, जंगल, कल-कारखानोंके मालिक देशके सर्व-साधारण हों और समस्त जनताके प्रयोजनकी पूर्तिपर ध्यान रखकर माल उत्पन्न किया जाय, लाभपर दृष्टि रखकर नहीं।

समाजवादियोंका कहना है कि प्रत्येक देशमें पण्य-वस्तुओंका उत्पादन और उनका वितरण राष्ट्र द्वारा ही होना चाहिये। यहां राष्ट्र या State से अभिप्राय है जनसमष्टि। उत्पादन और धनके वितरणके कार्यको पूजीपतियोंके हाथमें छोड़ देनेसे एकमात्र व्यवसायबुद्धि द्वारा ही वह परिचालित होगा। इसका परिणाम यह होगा कि मुट्ठीभर धनिक बहुसंख्यक दरिद्र लोगोंका शोषण करके अधिकाधिक धनी और शक्तिशाली बन जायंगे। धन-उत्पादनके जितने साधन हैं, उन सबपर राष्ट्रका नियन्त्रण होनेसे पूजीवादियोंकी तरह केवल लाभपर दृष्टि रखकर व्यवसाय नहीं चलाये जायंगे। उस समय देशवासियोंकी सेवा ही इनका आदर्श होगा। इस प्रणाली द्वारा देशके वाणिज्य-व्यवसाय परिचालित होनेपर देशमें बेकारीकी समस्या नहीं रह जायगी। लोगोंमें आत्मसम्मान और उत्तरदायित्वकी भावना बढ़ेगी और मजदूर परिश्रम करनेमें गौरव बोध करते हुए विशेष उत्साहके साथ देशकी सम्पत्ति-वृद्धिके लिये कार्य करेंगे।

यद्यपि समाजवादी जमीन, खान, बैंक, कल-कारखाना आदि को समाजकी साधारण सम्पत्तिमें परिणत कर देना चाहते हैं, किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि वे छोटे-छोटे व्यवसाय-वाणिज्य, कल-कारखाना और खेतीके लिये ज़मीनके छोटे-छोटे टुकड़ोंको एकदम उठा देना चाहते हैं। इसके विपरीत, वे छोटे-छोटे किसान, व्यवसायी और दूकानदारोंके बन्धु हैं। उनका विश्वास है कि पण्य उत्पन्न करनेवाले बड़े-बड़े कल-कारखानोंको समाजकी सम्पत्तिके रूपमें परिणत करके एक नूतन आर्थिक व्यवस्था स्थापित करनेमें मजदूर-श्रेणीके साथ छोटे-छोटे किसान, दूकानदार और व्यवसायियोंका स्वेच्छापूर्वक सहयोग होना आवश्यक है। यह सहयोग किस प्रकारका होगा, इसका निर्णय करनेका भार उनके ऊपर ही होगा। समाजवादी दल इसमें हस्तक्षेप नहीं करेगा। किसी भी कारणसे वे किसीके द्वारा उसपर दबाव डालकर कोई काम कराना नहीं चाहते। देशकी कृषिकी उन्नतिके लिये समाजवादी देशकी भूमिपर राष्ट्रका नियन्त्रण चाहते हैं। जो लोग भूमिसे धन-उत्पादनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे सहायता करेंगे, वे कर देकर अपने प्रयोजनके अनुसार एक निर्दिष्ट परिमाणमें भूमिपर अपना अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु किसान और उनसे कर लेनेवाली राष्ट्रशक्तिके बीच और कोई जमीनका मालिक नहीं होगा; क्योंकि बीचमें किसी पक्षके होनेपर उससे धन-वृद्धिमें सहायता पहुंचनी तो दूर रही, उल्टे वह शोषक बनकर धनके उत्पादनमें विघ्न ही उपस्थित करता है। इसलिये समाजवादियोंका

कहना है कि कृषिकी उन्नतिके लिये सबसे पहले किसानोंको बीचके जमीन्दार और महाजनोंके हाथसे मुक्त करना आवश्यक है।

जमीन्दारों और महाजनोंके नाग-पाशसे मुक्त होनेपर किसानों की आशा और उनका उत्साह बहुत बढ़ जायगा, और इसके बाद ही समाजतान्त्रिक रूपमें समवाय-पद्धतिपर उन्नत ढंगसे कृषि-कार्य चलाना सम्भव होगा। परन्तु यह कार्य भी बल-प्रयोग द्वारा नहीं हो सकता। एञ्जेल्सने लिखा है कि अपने छोटे-छोटे भूमिखण्डके प्रति अनुरक्त किसान जबतक समाजतान्त्रिक रूपमें समवाय-प्रणाली द्वारा परिचालित बड़े-बड़े कृषि-क्षेत्रकी उपयोगिता नहीं समझेंगे, तबतक उन्हे शान्तिके साथ अपनी जमीन आबाद करने देना चाहिये। पहले स्थानविशेषमें प्रत्येक कृषककी जमीनके परिमाणका हिसाब रखते हुए समवाय-प्रणालीके आधारपर विस्तृत भूमिमें कृषि-कार्य आरम्भ करना होगा। रूसमें इसी प्रथाका अवलम्बन किया गया है, जिसका फल आशातीत हुआ है। आरम्भमें वहां समवाय-पद्धतिके आधारपर कृषि-कार्य करनेके विरुद्ध किसानोंकी जो धारणा थी, वह अब बहुत कुछ दूर हो गयी है। अब समवायमूलक कृषि-कार्यमें वहांके किसान खुद ही अपना-अपना परिश्रम लगा रहे है और मेहनतानाके अलावा कृषि-कार्यमें जो लाभ होता है, उस लाभका अंश पाकर लाभवान हो रहे हैं। देशकी समृद्धि भी कृषि द्वारा विशेष रूपमें बढ़ रही है।

औद्योगिक युगके प्रारम्भमें पूजीवादका जो रूप था, उस रूपमें अब सम्पूर्ण परिवर्तन हो गया है। उस समयतक पूजीके केन्द्रीकरण तथा वृहत् रूपमें उत्पादनकी समस्या उपस्थित नहीं हुई थी। स्वतन्त्र प्रतियोगिता और अहस्तक्षेप (Laissez faire) की स्थितिको पार करके जब औद्योगिक पूजीवाद उस युगमें पहुंचा, जिसे मोनोपली कैपिटलिज्म (Monopoly Capitalism) कहते हैं, उस समय इन पूजीवादी राष्ट्रोंमें ससारका बँटवारा हो जानेके फलस्वरूप प्रतियोगिताकी भावना अत्यन्त तीव्र हो उठी, और एक देशने दूसरे देशको अपने सस्ते मालसे पाटने तथा स्वदेशी व्यवसायोंके संरक्षणके लिये विदेशी वस्तुओंकी आमदनी पर अधिक कर लगानेकी नीति ग्रहण की। संसारके बाजारोंपर, कच्चे मालके साधनोंपर तथा पूजी खपानेके लिये नये-नये क्षेत्रोंपर एकछत्र अधिकार स्थापित करनेकी चेष्टा—जो पहले शान्तिपूर्ण-प्रवेश (Peaceful penetration) के रूपमें थी—अब अस्त्र-बलकी पाशविक नीतिका रूप धारण करने लगी।

असल बात तो यह है कि पूजीवाद अब अपने विकासके अन्तिम स्तरमें पहुंच चुका है। उसका यह अन्तिम स्तर लेनिनकी भाषामें मोनोपली कैपिटलिज्म (Monopoly stage of Capitalism) है। इस स्तरमें पहुंचकर पूजीवादका साम्राज्यवादके साथ अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हो जाता है। विशालसे विशालतर पैमानेपर उत्पादन होते-होते अन्ततः उत्पादन और पूजीका इस प्रकार केन्द्रीकरण हो जाता है कि उनके ऊपर कुछ थोड़े-से

व्यवसायी-संघों (Cartels, syndicates and trusts) का एकछत्र अधिकार हो जाता है। जैसा कि लेनिनने कहा है :
"When Capitalism enters the stage of imperialism monopoly and finance capital become dominant, the export of capital acquires special importance and international monopoly combines of capitalists are formed which divide up the world" अर्थात् "जब पूंजीवाद साम्राज्यवादके स्तरमें प्रवेश करता है, उस समय एकछत्र आधिपत्य और व्यवसायमें लगानेके लिये मूलधनकी प्रधानता हो जाती है। विदेशोंमें व्यवसायके लिये पूंजी लगाना विशेष महत्वपूर्ण हो जाता है और तब पूंजीपतियोंके अन्तर्राष्ट्रीय एकछत्र गुट्ट कायम होते हैं, जो अपने स्वार्थके लिये संसारके देशोंको विभक्त कर लेते हैं।" इस स्थितिमे पहुंचकर ही पूंजीवाद ध्वंसकी ओर अग्रसर होने लगता है, और उसके परिणामस्वरूप समाजकी उत्पादन-क्षमतामें कुव्यवस्था फैल जाती है, जिससे लाखों-करोड़ों मनुष्य बेकार बन जाते हैं, और राष्ट्र-व्यवस्थाके विरुद्ध उनके हृदय मे असन्तोष एवं क्षोभकी धारणा प्रबल होने लगती है। पूंजीवादके साथ जो सब प्रतिकूलताएं स्वाभाविक है, वे ही इस समय उग्र रूपमें प्रकट होकर इसकी जड़को खोखला बना रही हैं। एक ओर धनिकों और श्रमजीवियोंमें स्वार्थ-संघर्ष एवं विरोध, और दूसरी ओर साम्राज्यवादी देशोंमे परस्पर-शत्रुता और समरायोजनोंकी प्रतियोगिता—इन्हीं परिणामोंके कारण समग्र विश्वमें धन-साम्यके आदर्शकी विजय अवश्यम्भावी जान पड़ती है।

राजका स्वरूप

यह पहले ही कहा जा चुका है कि आर्थिक कारणोंको लेकर ही समाज और राष्ट्रका उद्भव होता है और इनमें धीरे-धीरे अनवरत परिवर्तन होता रहता है। परिवर्तनकी इस गतिको हम सहज ही लक्ष्य नहीं कर पाते। राजसत्ता इस परिवर्तनकी गतिको सर्वदा रुद्ध करनेकी चेष्टा करती रहती है। अन्तमें राजमें ही परिवर्तन हो जाता है; किन्तु यह परिवर्तन विप्लवके रूपमें ही होता है। यह विप्लव जिस प्रकार आकस्मिक होता है, उसी प्रकार प्रचण्ड भी होता है। जितने आर्थिक सम्बन्ध होते हैं, वे सब क्रमागत परिवर्तन द्वारा राष्ट्रके संगठनपर निरन्तर आघात करते रहते हैं। इसके बाद जब ये शक्तियां बाधा प्राप्त करके प्रबलसे प्रबलतर हो उठती हैं, तब इन शक्तियों द्वारा जो विशाल तरंगें

उपस्थित होती है, उनसे पुरातन राष्ट्रका गठन चूर्ण-विचूर्ण हो जाता है, और फिर नूतन परिस्थितिके साथ सामंजस्य रखते हुए नये रूपमें राजका गठन होता है। इस प्रकार राजके ध्वंस और फिर उसकी सृष्टिका ही नाम राज-विद्रोह है।

समाज या राजके सम्बन्धमें किसी सत्य सनातन नियमको मार्क्स स्वीकार नहीं करता। मानव समाजकी धनोत्पादकशक्तियों के सहायक रूपमें ही विभिन्न शासन-व्यवस्थाओंकी युग-युगमें प्रधानता हुई है। प्रजातन्त्र या लोकसत्तात्मक शासन-प्रणालीसे हम जो कुछ समझते है, मार्क्स वैसा नहीं समझता। यह सर्वसाधारण के न्याय्य अधिकारोंका प्रतीक शासनतन्त्र नहीं है, बल्कि धन-तन्त्रवादकी शक्तिके विकासमें सहायक रूपमें इसका जन्म हुआ है। इस धनतन्त्रवादके अन्दर रहकर जनसाधारण चाहे कितना ही अधिकार प्राप्त करें, उससे धनतन्त्रवादकी ही पुष्टि होगी। आईन, कानून, अदालत, मताधिकार (Franchise), व्यवस्थापिका परिषद् इत्यादि सब कुछ इस धनतन्त्रवादके रथचक्रके पहियामें तेल देकर उसे मुलायम बनाने और उसके मार्गको सुगम करनेके लिये ही रचे गये हैं। इन सबका देशव्यापी प्रचार होनेपर भी इनके द्वारा श्रमिक वर्गकी दशामें आमूल उन्नति नहीं हो सकती। सार्वजनिक मताधिकार श्रमिकोंकी मांगोंकी पूर्ति करनेके लिये अनुग्रहमात्र है, यह धनतन्त्रवाद द्वारा पुष्ट राजकी मूलनीतिमें परिवर्तन नहीं कर सकता। इसके लिये वर्तमान राजमें आमूल परिवर्तन करना होगा। वर्तमान परिस्थितिके साथ सामंजस्य रखकर चलनेमें यह राज

अब असमर्थ हो गया है, इसलिये इसका प्रयोजन अब कुछ भी नहीं रह गया है। श्रेणीविहीन जिस साम्यवादकी सृष्टि इस धनतन्त्रवादके गर्भसे हुई है, वही अब इस धनतन्त्रवादका स्थान ग्रहण करना चाहती है। इसलिये राज या समाज अगर इसके विरुद्ध खड़ा होगा तो यह परिवर्तन ही विप्लवका रूप धारण कर लेगा।

राजकी उत्पत्तिका ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए एन्जेल्सने लिखा है :—"राज कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो समाजके ऊपर बाहरसे लाद दी गयी हो। समाजके क्रम-विकासमें ही इसका उद्भव हुआ है; राष्ट्रका उद्भव ही इस बातकी स्वीकारोक्ति है कि समाज अपनी ही उलझनोंमें उलझ गया है, और वह इस प्रकारकी परस्पर-विरोधी अवस्थाओंमें विभक्त हो गया है कि उनमें मेल नहीं हो सकता, और न उन्हें मिटानेकी इसमें क्षमता है। किन्तु समाजके अन्दरका यह विरोध-भाव, उसके अन्तर्गत विभिन्न श्रेणियां —जिनके स्वार्थ परस्पर-विरोधी हैं—कहीं आपसमें संग्राम करते-करते स्वयं अपना और समाजका भी ध्वंस न कर डालें, इसलिये एक ऐसी शक्तिकी आवश्यकता उपस्थित होती है, जो अपनेको प्रत्यक्ष रूपमें समाजसे परे रखे और जिसका उद्देश्य श्रेणी-संघर्षको बहुत बढ़ने न देकर उसे सीमाके अन्दर रखना हो। समाजसे उद्भूत यही शक्ति, जो समाजसे अपनेको परे रखती है और उससे अधिकाधिक पृथक् होती जाती है, राजसत्ता है।" *

---

* Friedrich Engels— "The Origin of the Family Private Properties and the State."

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाजके अन्दर विभिन्न श्रेणियों के बीच जो स्वार्थ-संघर्ष पाये जाते हैं और जिनमें कभी मेल नहीं हो सकता, उनसे ही राजसत्ताका उद्भव हुआ है। चूंकि समाजके अन्दर विभिन्न श्रेणियोंके बीच स्वार्थ-संघर्ष कभी मिट नहीं सकता, इसलिये राजसत्ताका प्रयोजन होता है, और इससे यह भी सिद्ध होता है कि राजका अस्तित्व इसलिये है, कि समाजके अन्दर विभिन्न श्रेणियोंके बीच जो स्वार्थ-संघर्ष है, उसका कभी समाधान नहीं हो सकता। मार्क्सके मतसे, यदि समाजके अन्दर विभिन्न श्रेणियोंके स्वार्थ-संघर्षमें मेल होनेकी सम्भावना होती तो राजका उद्भव ही नहीं होता, और न राज अपनेको कायम ही रख सकता। इसलिये राज एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणीपर आधिपत्य कायम करने और अत्याचार करनेका साधनमात्र है। इसका उद्देश्य ऐसी व्यवस्थाकी सृष्टि करना है, जो विभिन्न श्रेणियोंके बीच स्वार्थ-संघर्षकी प्रचण्डताको संयत रखते हुए इस अत्याचारको न्याय्य एवं चिरकालिक बनाकर रखे।

इसलिये साम्यवादियोंकी दृष्टिमें राज भी श्रमजीवियोंके ऊपर अत्याचार करनेका एक प्रधान साधन है। इस साधनकी बदौलत ही समाजकी वर्तमान व्यवस्था अक्षुण्ण रखी जाती है और इस प्रकारके राजका प्रधान उद्देश्य होता है—धनी-वर्ग अपनी विपुल सम्पत्तिका निर्विघ्न रूपमें भोग कर सके, इसकी व्यवस्था करना। बुखारिनने लिखा है :—"In all countries, the State is merely a union of the master class ..... Everywhere we

find that the ministers, high officials, members of Parliament, are either capitalists, land-owners, factory-owners and financial magnates, or else the faithful and well-paid servants of these lawyers, bank-managers, professors, army officers, bishops, who serve the capitalists not from fear but from conviction."—अर्थात् "सब देशोंमें राज क्षमता-सम्पन्न लोगों के एक संघके सिवा और कुछ नहीं है।......सब देशोंमें हम यही देखते हैं कि विभिन्न शासन-विभागोंके सचिव, उच्चपदस्थ कर्मचारी, राष्ट्रसभाके सदस्य या तो पूँजीपति हैं, या जमीनके मालिक या कारखानोंके मालिक या बैंकर, अथवा इनके विश्वस्त तथा उच्च वेतनभोगी सेवक या वकील, बैरिस्टर, बैंकोंके मैनेजर, अध्यापक, समर-विभागके अधिकारी या पादरी, जो पूँजीपतियोंकी सेवा भयसे नहीं, बल्कि अपने दृढ़ विश्वासके कारण करते हैं।"

साम्यवादी जिस श्रेणीहीन नूतन समाज-व्यवस्थाकी सृष्टि करना चाहते हैं, उसके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा है राजसत्ता। यह राजसत्ता ही मुट्ठीभर मनुष्योंके जमीन, खान, जंगल, कल-कारखानोंपर मालिकाना हक़को सुरक्षित रखे हुए है। इस राज-सत्तारूपी दुर्गके अन्दर ही धनिकोंकी व्यक्तिगत सम्पत्तिपर अधिकारकी कुंजी सुरक्षित रहती है। जो कोई इस व्यक्तिगत सम्पत्तिके अधिकारमें हस्तक्षेप करनेकी चेष्टा करेगा, राज अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंके साथ उसपर आघात करेगी। इसलिये राज

अपनी दुर्गम शक्ति लेकर आज समाजके थोड़े-से धन-कुबेरोंकी स्वार्थरक्षा कर रही है, और समाजके ये मुट्ठीभर मनुष्य समस्त सम्पत्तिके ऊपर अपने अबाध अधिकारके जोरसे करोड़ों मनुष्योंको सर्वस्वहीन बनाकर रखे हुए हैं, उनके सुख-दुःखके साथ निष्ठुर खेल खेल रहे हैं और उनके जीवनको अभिशप्त बनाकर उनपर मनमाना शासन कर रहे हैं। राजसत्ता द्वारा धनिकोंने अपने स्वार्थको इस प्रकार सुरक्षित कर रखा है कि उनके विरुद्ध सर्वहारा-दल चूँ तक नहीं कर सकता। इसलिये राजकी इस दुर्गम शक्तिको जबतक पराभूत नहीं किया जाता, तबतक धन-उत्पादनके साधनोंपर समाजका स्वामित्व नहीं हो सकता, और न श्रेणीहीन समाजका स्वप्न चरितार्थ हो सकता है। यही कारण है कि श्रमजीवियोंका विप्लव आरम्भ होनेपर सबसे पहला काम होता है—श्रमजीवियोंका राजसत्तापर अधिकार। राजसत्तापर अधिकार करके ही सर्वहारा-दल क्रमशः अपने राजनीतिक आधिपत्यका उपयोग धनिक वर्गके हाथसे पूंजीके छीनने और सम्पत्तिके समस्त साधनोंको राजके हाथमें केन्द्रीकरण करनेमें करेगा। इसके बाद वह उत्पादन-शक्तियोंमें अधिकसे अधिक और शीघ्रसे शीघ्र वृद्धि करनेकी चेष्टा करेगा। ×

शोषक-दल राजके शासनसूत्रको अपने हाथमें इसलिये रखना चाहता है, ताकि वह देशके बहुसंख्यक लोगोंके स्वार्थके विरुद्ध

× Manifesto of the Communist Party—Karl Marx and Friedrich Engels.

अपने शोषण-व्यापारको कायम रख सके। शोषित-दल राजके शासनसूत्रको अपने हाथमें इसलिये लेना चाहता है, ताकि वह वर्तमान कालकी दास-प्रथाके पोषक—थोड़े-से जमीन्दार और पूंजीपतियोंके स्वार्थके विरुद्ध बहुसंख्यक लोगोंकी स्वार्थरक्षाके लिये सब प्रकारके शोषणका अन्त कर सके। धनिक वर्गका पराभव तभी सम्भव हो सकता है, जबकि श्रमजीवियोंके हाथमें राजकी शासन-क्षमता हो। यह शासन-क्षमता प्राप्त करके ही श्रमजीवी धनिक वर्गके अनिवार्य एवं उत्कट प्रतिरोधको कुचल डालनेमें समर्थ हो सकता है और नूतन आर्थिक व्यवस्था कायम करनेके लिये समस्त श्रमजीवी एवं शोषित जन-समूहको संगठित कर सकता है। यह काम एकमात्र सर्वहारा श्रमजीवी-दल द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है, क्योंकि सर्वहारा दल ही एकमात्र सम्पूर्ण विप्लवी दल है और यही दल धनिक वर्गके विरुद्ध संग्राम करने और उसके हाथसे राजकी शासन-क्षमता छीननेमें समस्त श्रमजीवियों और शोषितोंको एक कर सकता है।

किन्तु राजकी यह शासन-क्षमता सर्वहारा दलके हाथमें सहज ही नहीं आ सकती। धनिक वर्गके स्वार्थोंकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे प्रेरित होकर राजने आईन-कानून बनाये हैं, न्यायालय स्थापित किये हैं, पुलिस और सशस्त्र सैन्य-दलका विशाल आयोजन किया है। केवल अदालत, आईन-कानून, पुलिस लाइन और सैन्य-दल ही नहीं, बल्कि विद्यालय, धर्म-मन्दिर, पार्लमेण्ट, समाचारपत्र—इन सबने मिलकर राजके चारों तरफ एक प्रकारके दुर्भेद्य-व्यूहकी

रचना कर डाली है जिसका भेदन करना सर्वहारा-दलके लिये सहज नहीं होता।

साम्यवादियोंका कहना है कि वर्तमान कालमें विभिन्न देशोंमें राजके जो भिन्न-भिन्न स्वरूप देखे जाते हैं, उन सबके अन्तरमें एक ही प्रकृति काम कर रही है। वह प्रकृति है थोड़े-से क्षमताशाली लोगों द्वारा बहुसंख्यक जन-समुदायपर अपने स्वार्थके लिये शासन। थोड़े-से लोग हुकूमत करते हैं और बाकी लोगोंको बाध्य होकर उनकी तामील करनी पड़ती है, और ऐसा इसलिये करना पड़ता है कि समाजमें जिस वर्गकी प्रधानता होती है, उसीकी सेवामें राज अपनी बलप्रयोगात्मक सत्ता (Coercive authority) को नियोजित करता है। समाजके जिन थोड़े-से लोगोंके हाथमें राजका अधिकार-सूत्र होता है, वे राजकी बलप्रयोगात्मक सत्ताके बलपर नागरिकोंको राजका आनुगत्य स्वीकार करनेके लिये बाध्य करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक राजमें थोड़े-से धनी एवं क्षमताशाली मनुष्य शासन-यन्त्रको अपने अधिकारमें करके राजके कोटि-कोटि मनुष्योंपर शासन कर रहे हैं।

आधुनिक सभ्यताका एक बहुत बड़ा दान गणतन्त्र समझा जाता है और इस गणतन्त्रकी बड़ी महिमा गायी जाती है। किन्तु इस गणतन्त्र शासनमें भी वास्तविक जनसत्ताका सर्वथा अभाव पाया जाता है। लेनिनने लिखा है :—"This democracy is always bound by the narrow frame work of capitalist expioitation and consequently always remains

in reality, a democracy only for the minority, only for the possessing classes, only for the rich." अर्थात् "आधुनिक गणतन्त्र पूंजीवादियोंके शोषणकी संकीर्ण परिधिसे सदा आबद्ध रहता है, अतएव वह वस्तुतः केवल थोड़े-से जमीन-जायदादवालों और धनवानोंके लिये ही है।" साम्य, स्वाधीनता एवं बन्धुत्वके आदर्शपर ही इस गणतन्त्रकी प्रतिष्ठा हुई थी, किन्तु आधुनिक गणतन्त्रमें यह आदर्श कभी चरितार्थ नहीं हो सकता। कारण, समाज-व्यवस्थाका आधार जबतक मनुष्य और मनुष्यके बीच धनगत वैषम्य बना रहेगा, तबतक न्याय, स्वाधीनता, समानता आदि बड़ी-बड़ी बातें आदर्श-क्षेत्रतक ही परिमित रहेंगी, सर्वसाधारणके लिये उनका कार्यरूपमें परिणत होना कभी सम्भव नहीं होगा। आधुनिक राज-व्यवस्थामें व्यक्ति-मात्रकी स्वाधीनताकी दुहाई दी जाती है अवश्य, किन्तु इस स्वाधीनताका मूल्य क्या हो सकता है, जबकि इस स्वाधीनतासे लाभ उठानेकी सुविधाओंसे बहुसंख्यक मनुष्य वञ्चित कर दिये गये हैं? विख्यात अंग्रेज लेखक अल्डस हक्सलेने स्वाधीनताके सम्बन्धमें लिखा है कि स्वाधीन और गणतान्त्रिक देशोंमें भी व्यक्तिकी स्वाधीनता केवल कहनेभरकी है। कानूनकी दृष्टिमें हम सब कुछ कर सकते हैं—मकान खरीद सकते हैं; मोटरगाड़ी खरीद सकते हैं, देश-विदेशमें भ्रमण कर सकते हैं, सन्तानको उत्तम शिक्षा दिलानेका प्रबन्ध कर सकते हैं; किन्तु असलमें हम कुछ नहीं कर

सकते। असलमें हम ठीक उतना ही कर सकते हैं, जितनी हममें वस्तु खरीदनेकी सामर्थ्य होती है—अर्थात् आर्थिक स्वाधीनता ही एकमात्र स्वाधीनता है। हम स्पष्ट देख रहे हैं कि आधुनिक विज्ञानने यद्यपि मनुष्यकी सुख-सुविधा और स्वच्छन्दताको नाना उपायोंसे बढ़ा दिया है और कानूनकी दृष्टिसे उन सबपर सब लोगोंका समान अधिकार है, फिर भी अधिकांश लोग उन सब वस्तुओंका उपभोग करनेसे बञ्चित रह जाते हैं। टेलीफोन, ग्रामोफोन, रेडियो, पुस्तक, समाचारपत्र—ये सब वस्तुएं सबके लिये व्यवहारोपयोगी हैं। विज्ञान नयी-नयी सुख-सुविधाओंकी सृष्टि करता है, किन्तु वर्तमान कालकी अक्षम सामाजिक-व्यवस्थाके कारण अधिकांश लोगोंके लिये इनका अभाव बना रहता है। इन सब वस्तुओंपर सबका न्याय्य अधिकार है, क्योंकि सबके लिये ये समान रूपमें उपयोगी हैं। इस प्रकार आधुनिक गणतन्त्र केवल राजनीतिक क्षेत्रमें ही जनसत्ताके सिद्धान्तको ग्रहण करता है, आर्थिक क्षेत्रमें नहीं। आर्थिक क्षेत्रमें यह राष्ट्रके करोड़ों स्त्री-पुरुषोंको गुलाम बनाकर रखता है, जिससे वे राष्ट्रके आर्थिक क्षेत्रमें अपना न्यायोचित भाग ग्रहण करनेसे बञ्चित रह जाते हैं। समानताका अस्तित्व केवल इस बातपर ही निर्भर नहीं करता कि व्यक्तिमात्र उससे लाभ उठानेके लिये स्वतन्त्र है, बल्कि इस बातपर भी कि, व्यक्तिमें उससे लाभ उठानेकी क्षमताएं मौजूद हैं। व्यक्तिमात्रके लिये समानताका सिद्धान्त तभी लागू हो सकता है, जबकि प्रत्येक व्यक्तिको—जाति, वर्ण, पेशा और सामाजिक

स्थितिपर विचार किये बिना—इस बातका एक समान सुयोग प्राप्त हो कि वह अपनी सहज शारीरिक, चरित्र-बल एवं बुद्धि-प्रतिभाका पूर्ण रूपसे उपयोग कर सके, राष्ट्रके प्रत्येक नर-नारीको आत्मविश्वासका, उसके व्यक्तित्वको परिपूर्ण रूपमें विकसित होनेका सुयोग मिले। इस प्रकारकी समानता आधुनिक कालके धनतान्त्रिक राष्ट्रोंमें हम कहां पाते हैं ? गणतन्त्र शासनमें व्यक्तिके जन्म-स्वत्व तथा उन स्वत्वोंके सबके साथ समान रूपमें प्रयुक्त होनेकी जो बात कही जाती है, वह एक मिथ्या भावनाके सिवा और कुछ नहीं है। अपने इन स्वत्वोंकी उपलब्धि करनेकी सम्भावनासे भी श्रमजीवी वञ्चित कर दिये जाते हैं। यों तो कहनेके लिये जमीन-मालिक और मजदूर, पूंजीपति और सर्वहारा, मन्त्री और जूतेपर पालिश करनेवाला एक मोची कानूनकी दृष्टिमें एकसमान नागरिक है, किन्तु यह कानूनी समानता ट्राटस्कीकी भाषामें "कैदीकी बेड़ीके रूपमें परिणत हो गयी है, जिससे श्रमजीवी पूंजीवादके रथके पहियेमें बँधा रहता है।" क्योंकि केवल लिखित अधिकारों एवं स्वत्वोंके बलपर कोई अबोध श्रमजीवी लखपती और करोड़पती नहीं बन सकता। कानूनकी दृष्टिमें प्रत्येक व्यक्तिको बोलने, लिखने और अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करनेकी स्वतन्त्रता है; किन्तु कोई भी ऐसा गणतान्त्रिक देश नहीं है, जिसके विधानमें श्रमजीवियोंके विरुद्ध कानूनका प्रयोग किये जानेकी व्यवस्था 'सार्वजनिक शान्ति' के नामपर सिर्फ इसलिये नहीं की गयी हो कि जिससे धनिक वर्गकी क्षमता ज्योंकी-त्यों

बनी रहे। न्यायालयकी दृष्टिमें सब नागरिक एकसमान समझे जाते हैं। किन्तु यहां भी समानताका यह सिद्धान्त सबके प्रति लागू नहीं हो सकता; क्योंकि यदि एक किसान अपने जमीन्दार द्वारा किये गये अन्यायके विरुद्ध तथा एक नौकर अपने मालिक द्वारा अकारण कामसे बर्खास्त किये जानेपर हर्जानेके लिये अदालत की शरण लेता है तो इसके लिये धन चाहिये। बिना धनके उसे न्याय मिलनेकी आशा नहीं, और उसे कितना हर्जाना या क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिये, इसका निर्णय भी उसकी सामाजिक स्थितिपर ध्यान रखकर ही किया जाता है। इस प्रकार धन खर्च करके अगर न्याय मिलता भी है, तो यह बड़ा महंगा सौदा पड़ता है। इसलिये यह स्पष्ट है कि राष्ट्रके अन्तर्गत सब मनुष्योंको एकसमान अधिकार प्राप्त हैं, यह बात व्यवहार-क्षेत्रमें तबतक सत्य एवं वास्तविक सिद्ध नहीं हो सकती, जबतक समाजमें धनी और दरिद्र—ये दो वर्ग कायम रहेंगे। मनुष्यके ऊपर मनुष्यका जो आधिपत्य आज हम देख रहे हैं, वह क्यों? इसीलिये तो, कि एकके पास सञ्चित धन है, और दूसरेके पास दाहिने हाथके सिवा और कोई पूंजी नहीं है? ऐश्वर्यका सुयोग प्राप्त करके ही तो आज थोड़े-से मनुष्य करोड़ों मनुष्यके व्यक्तित्वके विकास एवं आत्म-प्रकाशके मार्गको अवरुद्ध कर रहे हैं। इसीलिये समाजमें धनी और दरिद्र—ये दो सम्प्रदाय जब तक कायम रहेंगे, इन दो श्रेणियोंका अस्तित्व जबतक बना रहेगा, तबतक राजनीतिक क्षेत्रमें भी समानता असम्भव ही है। आधुनिक समाजका गठन धनगत

वैषम्यकी चट्टानपर ही किया गया है, और यह धनगत वैषम्य इस रूपमें कारगर होता है कि विभिन्न श्रेणियोंके बीच राजसत्ता पर अधिकार करनेके लिये निरन्तर संग्राम चलता रहता है। विभिन्न आर्थिक वर्गोंके बीच राजसत्तापर अधिकार करनेके लिये जो राजनीतिक संग्राम होते हैं, उनमें राजके लिये तटस्थ रहना कभी सम्भव नहीं होता।

विभिन्न संघर्षशील वर्गोंके परे राज अपनेको नहीं रख सकता, और न उनके बीच निरपेक्ष रूपमें न्याय कर सकता है; क्योंकि वर्तमान समाज-व्यवस्थामें आधुनिक राजका स्वरूप ही ऐसा होता है कि वह अपनी बलप्रयोगात्मक सत्ताका उपयोग एक आर्थिक वर्गके अधिकार एवं कार्योंको अपर आर्थिक वर्गके आक्रमणसे रक्षा करनेमें करता है। जहां कहीं समाजमें श्रेणी-संघर्ष होगा, वहां राजसत्ता अवश्य ही उस पक्षकी ओर होगी, जिसका सम्पत्तिके साधनोंपर प्रभुत्व होगा। इसलिये समाजमें यदि धन-उत्पादनके साधनोंपर मुट्ठीभर लोगोंका मालिकाना हक होगा, तो अवश्य ही राजसत्ता उस हककी रक्षा करनेमें नियोजित होगी; क्योंकि कानूनका अभिप्राय ही ऐसा है, और इस कानून द्वारा ही तो राजकी इच्छा-शक्ति व्यक्त होती है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि राजके लिये आईन-कानून वे ही लोग बनाते हैं, जिनके हाथमें रुपयेकी थैली होती है। इतिहासमें हम बार-बार यह देखते हैं कि राजके विधि-निषेधों द्वारा उसी वर्गकी इच्छा प्रतिफलित होती है, जो पूंजीपति या धनिक वर्गके नामसे अभिहित

होता है। समाजसे धनिक वर्ग ही शक्तिशाली होता है। इसलिये उसको सन्तुष्ट रखनेके लिये ही कानूनोंकी रचना की जाती है। यदि साम्यवादी देशके शासनमें बहुमत प्राप्त करके शान्तिपूर्ण वैध उपायों द्वारा भी पूंजीवादके स्थानपर साम्यवादकी स्थापना करना चाहें, तो पूंजीवादी उनका केवल विरोध ही नहीं करेंगे, बल्कि उनके विरुद्ध बलप्रयोग करनेकी भी चेष्टा करेंगे। देशद्रोह एवं राजद्रोहके कानून इस रूपमें बनाये जाते हैं, जिससे धनिक वर्ग की कठोर समालोचना सहज ही कानूनके शिकंजेमें आ सकती है। इसलिये वर्तमान राज-व्यवस्थाके स्वरूपके सम्बन्धमें हम जिस परिणामपर पहुंचते हैं, वह कुछ वाक्योंमें इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है :—"The state is always at the disposal of that class in the community, in which is vested the legal title to the ownership of these instruments. अर्थात्—" राज समाजके उस वर्गके इच्छानुसार सदा परिचालित होता है, जिसका धनोत्पादनके साधनोंपर कानून द्वारा कायम किया गया मालिकाना हक होता है। इस प्रकारका राज उक्त वर्गके स्वार्थपर ध्यान रखकर ही कानूनकी रचना करेगा। इसलिये किसी राजमें यदि धनोत्पादनके साधनोंपर मालिकाना हक रखनेवाले व्यक्तियोंकी संख्या इनी-गिनी होगी, तो उस राजमें कानूनका झुकाव भी उन चन्द इने-गिने व्यक्तियोंकी स्वार्थरक्षाकी ओर होगा। इसके विपरीत, यदि धनोत्पादनके साधनोंपर सम्पूर्ण समाजका अधिकार होगा, तो इस प्रकारके

राजमें कानूनोंकी रचना किसी वर्गविशेष या कुछ व्यक्तियोंके स्वार्थपर ध्यान रखकर नहीं की जायगी, बल्कि सारे समाजके हित-साधनपर ध्यान रखकर ही। इसलिये हम कह सकते हैं कि जिस समाज-व्यवस्थामें धनोत्पादनके मुख्य साधनोंपर कुछ थोड़ेसे व्यक्तियोंका मालिकाना हक होता होगा, वहां राजसत्ता व्यक्तिगत सम्पत्तिकी क्षमताके साथ-साथ चलेगी। जहां कहीं हम इस प्रकारकी समाज-व्यवस्था देखते हैं, वहां राजसत्ताको अन्ततः उन मुट्ठीभर व्यक्तियों द्वारा ही परिचालित होते पाते हैं। कौनसा कानून बनाना चाहिये, इसका निर्णय इन्हीं लोगोंके हाथमें होता है। राजकी क्षमता किन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये नियोजित होगी, इसका निर्णय भी वे ही करते हैं; और चूंकि राजके इन उद्देश्योंका निर्णय करनेमें वे श्रेणी-विभागकी योजनाके अनुसार अपनी स्थितिपर विचार करते हैं, इसलिये वे स्वभावतः इस योजनासे अधिकसे अधिक लाभ उठानेकी चेष्टा करेंगे, और इसी आधारपर वे राष्ट्रके सामूहिक कल्याणकी भावना करेंगे; और इस कल्याणमें अपना हक प्राप्त करनेके लिये राजके कानूनको तदनुसार रूपान्तरित करेंगे। किन्तु अन्य आर्थिक वर्ग भी तो राष्ट्र-कल्याणकी अपनी विशेष भावनाके अनुसार इसी मार्गका अनुसरण कर सकता है; और तब इसका परिणाम यह होगा कि राष्ट्र-कल्याणकी जिस भावनाके पीछे राजकी बलप्रयोगात्मक सत्ता होगी, वही भावना राजमें सर्वप्रधान बनी रहेगी। इसलिये श्रेणी-संघर्षके आधारपर निर्मित इस प्रकारके समाजमें राजसत्तापर अधिकार करनेके लिये

विभिन्न वर्गोंके बीच संग्राम अनिवार्य है। क्योंकि जिस वर्गके हाथमें राजकी क्षमता होगी, वह राष्ट्र-कल्याणकी अपनी भावनाको दूसरोंके ऊपर लादनेमें समर्थ होगा। वही इस बातका निर्णय करेगा कि राजनीतिक क्षमताका उपयोग किस रूपमें होना चाहिये; इसलिये राजनीतिक क्षमताके मुट्ठीभर लोगोंके हाथमें होनेका अर्थ ही है—उसका उपयोग मुट्ठीभर लोगोंके लिये किया जाना। लोक-कल्याण, न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित, धर्म-अधर्मके सम्बन्धमें इन मुट्ठीभर लोगोंकी जो धारणा होगी, उसकी छाप राजके समस्त विधि-विधानों एवं कार्योंपर पड़े बिना नहीं रहेगी। इसलिये राजनीतिक गणतन्त्रके होते हुए भी यदि समाजके करोड़ों मनुष्य दरिद्रताके अभिशापसे आजीवन अभिशप्त रहते हुए जीवनकी समस्त सुख-सुविधाओंसे वंचित रह जाते हैं, तो उस गणतन्त्रका उनके लिये क्या मूल्य हो सकता है ? सार्वजनिक मताधिकारके साथ-साथ यदि सम्पत्तिके समस्त साधनोंपर सार्वजनिक अधिकार नहीं हुआ, तो राजनीतिक गणतन्त्र (Political democracy) समाजके अधिकांश लोगोंके लिये एक अर्थहीन वाक्य ही बना रहेगा।

पार्लामेण्ट शासन-व्यवस्था

सब प्रकारकी राज-व्यवस्थाओंका एक मात्र लक्ष्य होता है—मनुष्यका कल्याण। किन्तु इस कल्याणके मार्गमें आज सबसे बढ़कर बाधक हो रहा है पूंजीवाद (Capitalism)—समाज और

राज-व्यवस्थाके ऊपर धनिकोंका अन्याय्य प्रभुत्व। इस प्रभुत्वका उच्छेद करनेके लिये सबसे पहले राजपर दखल जमाकर राजनीतिक क्षमता प्राप्त करनी होगी। इस बातको सोशलिष्ट, कम्यूनिष्ट, सब समान रूपमें स्वीकार करते हैं। जिन लोगोंके हाथमें शासन की बागडोर हो, जो राजकी समस्त क्षमताओंको हस्तगत किये हुए हैं वे सहजही स्वेच्छासे अपनी क्षमताओंका विसर्जन कर देंगे, इस बातकी संभावनापर भी बहुत कम लोग विश्वास करते हैं। ऐसी स्थितिमें राज-व्यवस्थापर अधिकार करके व्यक्तिगत संपत्तिका अन्त करनेका मार्क्सवादका जो आदर्श है, वह आदर्श हिंसामूलक श्रेणी-संघर्ष द्वारा चरितार्थ होगा या साम्यवादके अनुकूल क्रमशः जनमतकी सृष्टि करके और पार्लामेण्ट या व्यवस्थापिका परिषद्पर अधिकार करके शान्तिपूर्ण वैध उपायों द्वारा, इस बातको लेकर समाजवादियोंमें काफी मतभेद देखा जाता है। जो लोग शान्ति एवं वैध उपायों द्वारा समाजवादके आदर्शको वास्तव रूप देना चाहते हैं, उनका कहना है कि राज और समाज मानव-शरीरकी तरह ही क्रमविकासको प्राप्त होता है; क्रमविकास की इस गतिको किसी प्रकारकी बाह्य चेष्टा द्वारा और भी द्रुत नहीं किया जा सकता। मनुष्य अपनी बुद्धि द्वारा इतना ही कर सकता है कि इस क्रम-विकासके मार्गमें जो सब बाधाएं उपस्थित हों उन्हें दूर करनेकी चेष्टा करे। किसी प्रकारके श्रेणी-संघर्ष द्वारा खून-खराबी करके एक दिनमें भविष्यनका वह आदर्श राज चरितार्थ नहीं हो सकता। वोट-दाताओंमें अधिकांशको प्रचार-कार्य

द्वारा समाजवादके आदर्शसे अनुप्राणित किया जाना असम्भव नहीं है, और जब अधिकांश वोट-दाता समाजवादके आदर्शको मन-प्राणसे स्वीकार कर लेंगे तो वे व्यवस्थापिका परिषद्के चुनावमें ऐसे प्रतिनिधियोंको निर्वाचित करके भेजेंगे,जो समाजवादके आदर्श में विश्वास करने वाले और उसे वास्तव रूप देनेके लिये कृत-संकल्प होंगे। इस प्रकार 'समाजवादियोंके हाथोंमें शासन-क्षमता और उसके साथ-साथ राजकी समस्त शक्तियां आ जानेपर वे सहज ही अपनी क्षमता तथा राजसत्ताका उपयोग धनोत्पादनके मुख्य साधनोंपर समाजका कर्तृत्व कायम करनेमें करेंगे। ऐसा करके वे समाजवादके आदर्शको राजको शक्तियोंके बलपर कार्यान्वित करनेकी चेष्टा करेंगे। जनता जब एक सरकारके स्थानपर दूसरी सरकार कायम कर सकती है, तो फिर वह राज-सत्ता प्राप्त करके पूंजीवादके स्थानपर समाजवादकी स्थापना क्यों नहीं कर सकती ?

इसके विपरीत, जो लोग शान्ति एवं वैध उपायों द्वारा साम्य-वादी समाजकी स्थापनामें विश्वास नहीं करते, उनका कहना है कि सर्व-साधारणको मताधिकार प्राप्त होने से ही प्रकृत गणतंत्र की स्थापना नहीं हो सकती। जबतक समाजमें धनी और दरिद्र ये दो वर्ग कायम रहेंगे, तबतक गणतंत्रका सिद्धान्त कल्पना-क्षेत्र तक ही परिमित रहेगा। राजनीतिक क्षेत्रके समान आर्थिक क्षेत्रमें भी जबतक जनसाधारणके समानाधिकारका सिद्धान्त स्वीकृत नहीं होगा, पूंजीवादियोंके शोषणके कारण जबतक करोड़ों मनुष्य

आजीवन दरिद्रताकी चक्कीमें पिसते रहेंगे तवतक पेटके सिवा उन्हें और किसी वातकी चिन्ता हो ही नहीं सकती। देशकी राजनीति अथवा शासनका स्वरूप इत्यादि विषयोंमें वे किसी प्रकारकी दिलचस्पी नहीं ले सकते। उनकी जीवन-यात्रा ही इस रूपमें चलती है जिससे वे किसी प्रकारके सार्वजनिक राजनीतिक जीवनमें भाग ले ही नहीं सकते। प्रचार कार्य द्वारा जनताके मन एवं भावनाओंपर अधिकार करनेके जितने साधन हैं उन सबपर राज या धनिक वर्गका कर्तृत्व एवं प्रभाव होता है। राज द्वारा परिचालित शिक्षा संस्थाओंमे इस वातकी शिक्षा दी जाती है कि राजके प्रति हार्दिक आनुगत्य-भाव रखना चाहिये; राजकी प्रचलित व्यवस्था को उलटनेकी चेष्टा करना सवसे वड़ा अपराध है, अन्यान्य राष्ट्रोंकी प्रतियोगितामें स्वराष्ट्रको शक्तिशाली एवं अप्रतिद्वन्द्वी वनानेके लिये यह आवश्यक है कि राजके सैनिकोंकी वीरोचित पूजा की जाय; उत्कट राष्ट्रीयताके मदमें उन्मत्त होकर प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रोंके प्रति इर्ष्या भाव रखा जाय। इस प्रकार नागरिकों में वचपनसे ही राष्ट्रीयताकी भावना भर दी जाती है जिससे राज ही सवसे वड़ा देवता वन जाता है और इस राज-देवताके विरुद्ध विद्रोह करना अत्यन्त जघन्य अपराध समझा जाता है। उधर धर्म-मन्दिरोंमें धर्म-पुरोहित वरावर यह उपदेशामृत श्रद्धालु श्रोताओंके कानोंमें भरते रहते हैं कि मानव-जीवनमें दुःख, अभाव आदि जितने कष्ट हैं वे सव मनुष्य-कृत नहीं, ईश्वर-कृत हैं; उन्हें शान्ति एवं धीरतापूर्वक सहन करनेमें ही कल्याण है; अपनी

स्थितिमें अपनी शक्तियों द्वारा परिवर्तन लानेके लिये राजके विरुद्ध विद्रोह करना धर्मद्रोह है—ईश्वर-द्रोह है। वर्तमान कालके समाचारपत्र भी धनिकोंके हाथके हथकण्डे हैं। रेडियो और समाचारपत्र द्वारा यह प्रचार किया जाता है कि देशपर पड़ोसके शत्रु-राष्ट्रों द्वारा आक्रमण होनेकी अशंका है, इसलिये देश-रक्षा एवं आत्म-रक्षाकी दृष्टिसे जनता द्वारा ऐसा कोई आन्दोलन नहीं होना चाहिये जिससे राजकी शक्ति क्षीण हो। समाचारपत्रोंमें राष्ट्रीयताको ही बड़ा धर्म बताकर प्रचलित शासन-व्यवस्थाके दोषोंपर पर्दा डालने तथा उसे न्यायोचित मान लेनेकी शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार विद्यालयों, धर्म-मन्दिरों तथा रेडियो, समाचारपत्र आदि द्वारा जनताके मनको वशीभूत करनेकी चेष्टा की जाती है, जिससे बन्धन-मुक्त होनेकी उसकी प्रवृत्ति कभी उग्र होने न पाये और राजकी क्षमता अक्षुण्ण बनी रहे। धनिकों द्वारा परिचालित वर्तमान राज-व्यवस्थामें जनसाधारणका जीवन इतने रूपोंमें शृंखलित रहता है कि मताधिकारका स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग करके अपना प्रतिनिधि चुननेका अधिकार होने पर भी वे ऐसे शासनकी प्रतिष्ठा नहीं कर सकते, जो उनके स्वार्थोंका पर्याप्त रूपमें रक्षा कर सके। 'वोट देने और प्रतिनिधि-निर्वाचनमें भी उनको कोई स्वतंत्रता नहीं होती। नाना प्रकारसे धनिक वर्ग उनके ऊपर अपना प्रभाव डालकर कठपुतलीकी तरह उनसे अपना काम लेता है।

इसके सिवा, साम्यवादी वर्तमान समाज-व्यवस्थामें आमूल

परिवर्तन करके जिस नूतन समाजकी प्रतिष्ठा व्यक्तिगत संपत्तिका उच्छेद करके करना चाहते हैं, वह पार्लामेण्ट जैसी संस्था द्वारा सम्भव नहीं हो सकता। मार्क्सके शब्दोंमें पार्लामेण्ट महज "कानूनी संस्था" या "talking shop" के सिवा और कुछ नहीं है। इसका काम होता है हर तीन या पांच सालके बाद निर्णय करना कि शासकवर्गके कौन-कौनसे व्यक्ति पार्लामेण्ट द्वारा जनताका दमन एवं निर्यातन करेंगे। पार्लामेंट काम करनेवाली संस्था नहीं होती। अमेरिका, फ्रांस, इङ्गलैण्ड, स्वीजरलैण्ड — किसी भी देशकी पार्लामेंट को ले लीजिये। इनका काम होता है—जनसाधारणको मूर्ख बनाकर रखनेके लिये केवल वादविवादका आडम्बर खड़ा किये रहना। राजके जितने कार्य होते हैं वे सब विभिन्न विभागोंके दफ्तरों और उनके कर्मचारियों द्वारा सम्पादित होते हैं। विभिन्न दलों द्वारा गठित होनेके कारण इस बातकी कोई निश्चयता नहीं होती कि पार्लामेण्टके किसी विशेष दलके हाथमें कबतक क्षमता रहेगी। आज जिस दलके हाथमें क्षमता है, वह अगर कोई क्रांतिकारी कानून बनाता है तो आगामी चुनावमें किसी दूसरे दलका बहुमत होनेपर वह दल चाहे तो उस कानूनको फिर रद्द भी कर दे सकता है। ऐसी स्थितिमें कोई भी दल समाजमें क्रांति लानेवाले किसी कानूनको पास करनेका साहस नहीं कर सकता। समाज-व्यवस्थामें आमूल परिवर्तन करके नूतन समाज-व्यवस्था कायम करनेका काम इतना सहज नहीं होता कि पार्लामेण्टके किसी विशेष दल द्वारा

यह कार्य एक बारमें ही सम्पन्न एवं सुनिश्चित हो जाय। इन्हीं सब कारणोंसे साम्यवादी पार्लामेण्टका आश्रय ग्रहण करके शान्तिपूर्ण वैध उपायों द्वारा समाजवादकी स्थापनामें विश्वास नहीं करते; और साम्यवादी ही क्यों, जो कम्यूनिस्ट या साम्यवादी नहीं हैं वे भी यह विश्वास नहीं करते कि पार्लामेण्ट द्वारा समाजवादकी पूर्ण रूपसे प्रतिष्ठा हो सकती है। प्रोफेसर कोलने लिखा है:— "I find it impossible to believe that any country will achieve *socialism by parliamentary means*, though parliamentary methods may avail to carry it a certain distance along the road"* अर्थात् कोई देश पार्लामेंट द्वारा समाजवादकी प्रतिष्ठा करेगा, यह विश्वास करना मेरे लिये असम्भव है। पार्लामेंट द्वारा समाजवादके मार्गमें हम कुछ दूर तक अग्रसर हो सकते हैं।"

मार्क्सवादी कम्यूनिस्टोंका कहना है कि वर्तमान राज बल प्रयोगके मूर्त्त स्वरूप हैं। उनका जीवन ही इस बातपर निर्भर करता है कि वे अपने उद्देश्योंकी रक्षाके लिये सशस्त्र बल-प्रयोगका आश्रय ग्रहण करें। यही कारण है कि जो लोग राजकी सेनामें राजके विरुद्ध प्रचार कार्य करते हैं, उन्हें यह अत्यन्त कठोर दण्ड देता है। राजके हाथमें दमनका जो अस्त्र होता है उसके प्रयोग द्वारा ही यह नागरिकोंको अपना आदेश पालन करनेके लिये विवश करता है। इतिहास इस बातका साक्षी है कि सशस्त्र

* An Outline of Modern Knowledge

बल-प्रयोग द्वारा ही पूंजीपतिका उत्थान हुआ है—उसका अधिकार सुदृढ़ हुआ है, और शासन-व्यापारमें वह अपनी प्रधानताको कायम किये हुए है। विप्लव उसे क्षमता प्रदान करता है। गृह-युद्ध उसके अधिकारको सुदृढ़ बनाता है और दमन या डिक्टेटरी द्वारा वह अपने आधिपत्यको कायम रखता है। इसलिये कम्यूनिस्ट धनिकों द्वारा संगठित एवं नियंत्रित राजपर क्रमशः शान्तिपूर्ण वैध उपायों द्वारा अधिकार करनेकी बात नहीं मानते। वे विप्लव द्वारा पूंजीवादी राजका उच्छेद करना चाहते हैं। उनका कहना है कि जो लोग दीर्घकालसे देशका शासन करते आ रहे हैं वे अपनी सुरक्षित स्थितिको सुदृढ़ बनानेके लिये अपनी सारी क्षमताओंका प्रयोग करेंगे। क्षमताका मोह इतना प्रबल होता है कि उसके सामने मनुष्य न्याय और नीतिकी बातें नहीं सुनता। दूसरे पक्षका दावा न्यायोचित है, उसकी मांगोंके पीछे युक्ति और तर्क है, वह संख्यामें बहुत ज्यादा है इसलिये उसके हाथोंमें स्वेच्छापूर्वक शासन क्षमता अर्पण कर देनी चाहिये जिससे उसका उपयोग सार्वजनिक कल्याणपर दृष्टि रखकर किया जाय, इस प्रकारकी भावना शासक दलके मन-प्राणपर कोई प्रभाव नहीं डालती। उसे अपने कायमी हकोंकी ही चिन्ता होती है और उन्हें वह सहज ही छोड़ देना नहीं चाहता। क्षमताको छातीसे स्वयं चिपकाये रहना मनुष्यका स्वभाव होता है। अतएव इस क्षमतापर विजय प्राप्त करनेके लिये प्रतिपक्षीके संकल्पको भग्न करनेके लिये बल-प्रयोगकी आवश्यकता होती है। कान्फ्रेन्सोंमें प्रस्ताव पास करके हम अपने

दावेका महत्व शत्रुपक्षके सामने प्रमाणित कर सकते हैं, किन्तु इससे हम अपने संकल्पको उसके ऊपर लाद नहीं सकते। हम जिस आदर्शके लिये संग्राम कर रहे हैं उस आदर्शको जब शत्रु-पक्ष स्वेच्छासे ग्रहण नहीं करेगा तो हमें अपनी दुर्जय शक्ति द्वारा उसे ऐसा करनेके लिये बाध्य करना होगा। इस प्रकारके हिंसा-मूलक विप्लव द्वारा ही कम्यूनिस्ट राजपर अधिकार करना संभव समझते हैं। उनका कहना है कि हमें संग्रामके आरम्भसे ही शत्रुके विरुद्ध आक्रमणशील बनना होगा। वे अपनी इस पद्धतिका समर्थन यह कह कर करते हैं कि जिस उद्देश्यसे वे विप्लव-पथका अनुसरण कर रहे हैं वह उद्देश्य अत्यन्त महान् है—वह उद्देश्य है, शृंखलित एवं उत्पीड़ित सर्वहारा दलकी मुक्ति, और अबतकके अनुभवसे सफलता प्राप्त करनेका और कोई दूसरा मार्ग नहीं दिखाई पड़ता।

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि कम्यूनिस्ट हिंसाका इसलिये समर्थन करते हैं, चूंकि उनका उद्देश्य महान् है। क्योंकि इस युक्तिको यदि मान लिया जाय तब तो कोई भी दल, जिसका उद्देश्य महान् होगा, हिंसात्मक पद्धतिका औचित्य सिद्ध कर सकता है। इसलिये कम्यूनिस्ट हिंसाका औचित्य सिद्ध करनेके लिये उसका समर्थन नहीं करते। इसके विपरीत, वे हिंसाको अनिवार्य समझते हैं; क्योंकि पूंजीवादी राज बिना संग्रामके आत्म-समर्पण करना नहीं चाहता। कम्यूनिस्टों द्वारा बल-प्रयोग इसलिये उचित है, कि एक नवोत्थित श्रेणीके रूपमें पतनोन्मुख धनिक-

वर्गके विरुद्ध उन्हें संग्राम करना पड़ता है और इस संग्राममें उन्हे उन्हीं अस्त्रोंका प्रयोग करना पड़ता है जिन्हें धनिकवर्गने संघर्षका सहज साधन बना लिया है, और कम्यूनिस्ट बल-प्रयोग द्वारा जब अपने उद्देश्यमें सफल होते हैं तो उनकी यह सफलता बल-प्रयोगके औचित्यको सिद्ध करती है, कारण श्रेणी-हीन समाजमें फिर बल-प्रयोगकी आवश्यकता नहीं रह जाती। साम्यवादी राजमें बल-प्रयोगका प्रयोजन इस लिये नहीं रह जायगा कि उसमें एक मनुष्यके ऊपर दूसरे मनुष्यका प्रभुत्व, देशकी जनताके एक भागके ऊपर दूसरे भागका प्रभुत्व नहीं रह जायगा और लोग विना बलप्रयोग एवं प्रभुत्वके ही सामाजिक अस्तित्वके साधारण नियमोंका पालन करनेमें अभ्यस्त हो जायंगे।

सर्वहारादलका नायकत्व

यह पहले ही कह आये हैं कि राजपर अधिकार करनेके लिये कम्यूनिस्ट एकमात्र विप्लवके मार्गपर ही विश्वास करते हैं। विप्लव द्वारा धनिकवर्गके हाथसे शासनसूत्र छीनकर वे Revolutionary dictatorship of the proletariat अर्थात् 'सर्वहारा का विप्लवी अधिनायकत्व' स्थापित करना चाहते हैं। मार्क्सने लिखा है कि धनतान्त्रिक एवं साम्यवादी समाजके बीच जो संक्रान्ति-काल होता है उस काल में 'सर्वहारा दलका अधिनायकत्व' के सिवा और कोई दूसरा राज हो ही नहीं सकता। सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये सर्वहारा दलका पहला काम होता है विप्लव द्वारा पूंजीवादी राजका उच्छेदसाधन करके

राजनीतिक क्षमता प्राप्त करना और तब अपना अधिनायकत्व स्थापित करना। इसके बाद पूंजीवादी समाजके साम्यवादी समाजमें रूपान्तरित होनेमें जो समय लगता है, उस बीचके समय में ही श्रमजीवी दलके अधिनायकत्वकी आवश्यकता होती है। इस संक्रमण कालमें श्रमजीवी दलका पहला काम होता है व्यक्तिगत संपत्तिका उच्छेद करके धनोत्पादनके साधनोंपर समाजका अधिकार स्थापित करना। किन्तु यह काम सहज ही नहीं हो जाता। अत्यन्त शृङ्खला एवं दृढ़ताके साथ संघवद्ध रूपमें कार्य करना पड़ता है। जो लोग अन्यान्य अधिकारों एवं विशेष सुख सुविधाओंसे वंचित कर दिये जाते हैं वे अपने हृत अधिकारोंको प्राप्त करनेके लिये नाना प्रकारके छल-बल एवं गुप्त षड्यन्त्रका आश्रय ग्रहण करते हैं—विद्रोह फैलानेकी चेष्टा करते हैं। शताब्दियोंसे जनताके मनपर जो सब पुराने विचार एवं कुसंस्कार अपना अड्डा जमाये रहते हैं, उनके विरुद्ध निर्भय संग्राम चलाना पड़ता है। श्रेणीहीन समाजकी सृष्टिके मार्गमें इस प्रकारके कितने ही बाधा-विघ्न उपस्थित होते हैं जिनपर विजय प्राप्त करनेके लिये श्रमजीवी दलको बल प्रयोग करना पड़ता है। यदि वे ऐसा न करें तो उनके सारे त्याग, कष्ट स्वीकार एवं बलिदान व्यर्थ हो जाते हैं और विप्लवकी सारी सार्थकता ही नष्ट हो जाती है। किन्तु यह सर्वहारा दलका अधिनायकत्व तभी तकके लिये आवश्यक होता है जब तक कि श्रेणीहीन समाजकी पूर्णरूपसे प्रतिष्ठा नहीं होती। जब समाजमें व्यक्तिगत संपत्तिके प्रति जनताका आक-

र्पण नहीं रह जायगा, तब संचयकी निष्ठुर प्रवृत्ति क्षीण हो जायेगी धनोत्पादनके मुख्य साधन, जमीन खान, कल कारखाना आदिपर सर्व साधारणका अधिकार स्थापित हो जायगा। जब जन साधारणके मनपरसे पुराने रूढ़िवादी कुसंस्कारोंका जादू हट जायगा, तब सर्वहारा दलका अधिनायकत्व का प्रयोजन भी नहीं रह जायगा। इसका प्रयोजन तो उस संक्रमण काल तकके लिये ही रहता है जब तक कि पूंजीवादी समाज साम्यवादी समाजमें रूपान्तरित नहीं होता, और जब श्रेणी-हीन समाजका आदर्श कार्यरूपमें परिणत हो जाता है, समाजके अन्दर सारे श्रेणीगत भेद एवं वैर-विरोध नष्ट हो जाते हैं तो फिर इस अभिनव राष्ट्र सर्वहारादलके अधिनायकत्वकी आवश्यकता भी समाप्त हो जाती है। इसके बादसे समाजके विभिन्न क्षेत्रोंमें राजसभाका हस्तक्षेप निरर्थक हो जाता है और यह नूतन राज क्रमशः क्षीण होकर लुप्त हो जाता है-"The state will wither away." मार्क्स और एञ्जेल्सने कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टो में "Transformation of the proletariat into the ruling class" और "establishment of democracy" अर्थात "सर्वहाराका शासकवर्गमें रूपान्तरित होना और "गणतंत्रोंकी प्रतिष्ठा" इन दो वाक्योंका साथ साथ उल्लेख किया है, इसलिये इस प्रसङ्गमें हमें अब इस बात पर विचार करना है कि पूंजीवादसे साम्यवादके संक्रमणकाल 'Transition period' में गणतन्त्रमें किस प्रकार परिवर्तन होता है।

हम देख चुके हैं कि धनतान्त्रिक समाजमें गणतंत्र किस प्रकार धनतान्त्रिक शोषणकी संकीर्ण परिधिके अन्दर आबद्ध रहता है, और इसलिये यह गणतन्त्र वास्तवमें केवल अल्प संख्यक धनिक वर्गका ही गणतन्त्र होता है। धनतांत्रिक समाजमें व्यक्ति स्वाधीनता उसी प्रकारकी होती है जिस प्रकारकी स्वाधीनता प्राचीन ग्रीस के प्रजातंत्र राज्योंमें गुलामके मालिककी थी। पूंजीपतियोंके शोषण के कारण आधुनिक कालके श्रमजीवी दारिद्र्य एवं अभावके कारण इतने हताश और पस्त हिम्मत बने रहते हैं कि उनके लिये गणतंत्रका कोई भी मूल्य या महत्त्व नहीं होता। राजनीतिमें भी उनके लिये कोई दिलचस्पी नहीं होती। साधारण समयमें देशकी अधिकांश जनता सामाजिक एवं राजनीतिक जीवनमें भाग लेनेसे वंचित ही रहती है।

इसलिये पूजीवाद समाजका गणतन्त्र वास्तवमें देशके अत्यन्त तुच्छ अल्प समुदाय धनिक वर्गके लिये ही है। इस गणतन्त्र रूपी यन्त्रके कल पुर्जोंको अगर हम ध्यानसे देखें तो हमें मालूम होगा कि सार्वजनिक मताधिकार, प्रतिनिधि संस्थायें, समाचार-पत्र इन सबके होते हुए भी गणतन्त्रके साथ इतने प्रतिबन्ध लगे हुए हैं कि उनके कारण देशके दीन दरिद्र लोग राजनीति और गणतन्त्रमें सक्रिय भाग लेनेसे विछिन्न कर दिए जाते हैं।

पूजीवादी समाजका जो यह संकीर्ण दम्भपूर्ण और सम्पूर्ण मिथ्या गणतन्त्र है उससे साम्यवादी समाजके वास्तविक गणतन्त्रकी प्रतिष्ठाका मार्ग सरल और विघ्न बाधा रहित निष्कण्टक

नहीं होता। साम्यवादकी ओर अग्रसर होनेके लिये एक मात्र 'सर्वहारा दलका अधिनायकत्व' मार्गका ही अनुसरण करना पड़ता है। इसके सिवा पूंजीवादी शोषकवर्गके प्रतिरोधको भङ्ग करनेका और कोई दूसरा उपाय नहीं रह जाता।

किन्तु श्रमजीवीवर्गका जो अधिनायकत्व होता है वह एक ओर जहां गणतन्त्रको व्यापक बनाकर पहिले-पहल वास्तविक गणतंत्र—सर्व साधारणका गणतन्त्र केवल धनिकोंका नहीं—की प्रतिष्ठा करता है, वहां वह दूसरी ओर उत्पीड़कों, शोषकों एवं पूंजीपतियोंके लिये इस प्रकारके अनेक प्रतिबन्धोंकी भी सृष्टि करता है जिससे उनकी स्वतन्त्रताको नियन्त्रित किया जा सके। विशाल जन-समुदायको मजदूरीकी गुलामीसे मुक्त करनेके लिये अत्याचारी शोषक दलके प्रतिरोधको बलपूर्वक भङ्ग करनेकी आवश्यकता होती है। इसलिये जब तक यह 'सर्वहारा दलका अधिनायकत्व' रहता है तब तक न तो स्वतन्त्रता रहती है और न गणतन्त्र। जैसा कि एञ्जेल्सने अपने एक पत्रमें लिखा था:—
As long as proletariat still needs the state,it needs it not in the interests of freedom, but for the purpose of crushing its antagonists, and as soon as it becomes possible to speak of freedom, then the state, as such ceases to exist." अर्थात् सर्वहारा दलको जबतक राजकी आवश्यकता होती है, वह उसका उपयोग स्वाधीनताके लिये नहीं, बल्कि अपने विरोधियोंको कुचल डालनेके

लिए करता है; और ज्योंही स्वाधीनताकी चर्चा करना संभव हो जाता है, राजके अस्तित्वकी आवश्यकता नहीं रह जाती।" इस प्रकार हम देखते हैं कि पूंजीवादसे साम्यवादके बीचका जो संक्रमण काल होता है उसमें गणतंत्रका एक विकृत रूप होता है। इस रूपमें अधिकांश जनताके लिए गणतंत्र होता है और जनताके शोषकों एवं उत्पीड़कोंका बलप्रयोग द्वारा .दमन किया जाता है, अर्थात् गणतंत्रसे उनका वर्जन किया जाता है। "Critique of the Gotha Programme" क्रिटिक आफ दि गोथा प्रोग्राममें मार्क्सने साम्यवादी समजाके सम्बन्धमें लिखा है कि पूंजीवादी समाजके गर्भसे जिस साम्यवादी समाजका अभी अभी जन्म हुआ है उसपर आर्थिक, नैतिक एवं बौद्धिक सभी दृष्टियोंसे उस पुरातन समाजकी छाप अंकित रहती है। इस समय साम्यवादी समाजका जो रूप होता है उसे मार्क्सने साम्यवादी समाजकाप्रथम या निम्न सोपान First or lower phase बताया है।

साम्यवादके इस प्रथम सोपानमें न्याय और समानता नहीं आ सकती; धनगत वैषम्य अन्यान्य भेद भाव अब भी बने ही रहते हैं, किन्तु एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्यका शोषण असंभव हो जाता है, क्योंकि धनोत्पादनके साधन जमीन, खान कल-कारखाना आदिपर सम्पूर्ण समाजका अधिकार हो जाता है। साम्यवादी समाजकी विकास धाराका विश्लेषण करते हुए मार्क्सने बताया है कि पहले वह धनोत्पादनके साधनोंपर व्यक्ति विशेष या समुदाय

विशेषके अधिकार रूपी अन्यायको नष्ट करता है। इसके बाद प्रयोजनकी वस्तुओंका वितरण आवश्यकताके अनुसार नहीं बल्कि कार्य्यके अनुसार होनेवाले अन्यायको नष्ट करनेमें वह शीघ्र सक्षम नहीं होता। *मार्क्स मनुष्य-मनुष्यके बीच जो अपरिहार्य्य असमा-*नता है उसकी उपेक्षा नहीं करता। इतना ही नहीं बल्कि वह यह भी स्वीकार करता है कि केवल धनोत्पादनके साधनोंपर सम्पूर्ण समाजका अधिकार हो जानेसे ही वस्तुओंके वितरण और धनिक वर्गके अधिकारकी असमानताके दोष दूर नहीं हो जाते। जबतक व्यक्तिको उसके कार्य्यके अनुसार उत्पादित वस्तुयें मिलती रहेंगी, तबतक समाजमें वितरण सम्बन्धी असमानता बनी ही रहेंगी।

इसलिये साम्यवादी समाज (Communist Society) के प्राथमिक स्वरूपमें धनिक वर्गका अधिकार 'bourgeois right' सर्वांशमें नहीं, बल्कि आर्थिक रूपमें ही नष्ट किया जाता है। इस समय तक केवल इतना ही परिवर्तन होता है कि धनोत्पादनके साधन जो पूंजीवादी समाजमें व्यक्तिविशेष या समुदाय विशेषकी व्यक्तिगत संपत्ति समझे जाते हैं, उन्हें समाजवाद सार्वजनिक सम्पत्तिके रूपमें ही परिवर्तन कर देता है। बस, इसी हद तक धनिक वर्गके अधिकारका लोप होता है। जो काम नहीं करेगा उसे खाना नहीं मिलेगा He who does not work, shall not eat." यह समाजवादी सिद्धान्त चरितार्थ हो गया रहता है, जितना परिश्रमका परिमाण होगा, उसी परिमाणमें परिश्रम द्वारा उत्पन्न वस्तुयें मिलेंगी For an equal quantity of

labour, an equal quantity of products." यह समाजवादी सिद्धान्त भी चरितार्थ हो गया रहता है। किन्तु अबतक भी पूर्ण रूपसे साम्यवादी समाज Communist society की स्थापना नहीं होती है और न धनिक वर्गके अधिकारका सर्वथा लोप होता है, क्योंकि इस समय तक असमान व्यक्तियोंको उनके असमान कार्य्यके लिए असमान रूपमें प्रयोजनीय वस्तुय मिलती हैं।

मार्क्सने इस असमान वितरणकी 'त्रुटि' स्वीकार की है सही, किन्तु उसका कहना है कि साम्यवादके प्रथम सोपानमें ऐसा होना अनिवार्य है, क्योंकि ऐसा ख्याल करना कोरी कल्पना utopia के सिवा और कुछ नहीं है कि पूंजीवादके पतनके बाद लोग फौरन बिना किसी स्वतंत्र मापदंड withot any standard of right के कार्य्य करनो सीख जायंगे। पूंजीवादके लुप्त होनेके साथ इस प्रकारके परिवर्तनकी आर्थिक नींव नहीं पड़ जाती। और इस समय तक स्वत्वका कोई दूसरा मापदण्ड नहीं होता। इसलिये ऐसे राजकी आवश्यकता होती है जो धनोत्पादनके साधनोंपर सार्वजनिक अधिकारको कायम रखते हुए उत्पन्न वस्तुओंके वितरणमें समानता बनाये रखे।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि सम्पूर्ण साम्यवादीसमाज की प्रतिष्ठा होनेपर ही किसी प्रकारके राजकी आवश्यकता नहीं रह जाती। मार्क्सकी भाषामें यही साम्यवादी समाजका उच्चतर स्वरूप या द्वितीय सोपान 'Higher phase' है। मार्क्सने लिखा है

इस स्थितिमें परिश्रम गत भेदके कारण मनुष्य मनुष्यमें वितरण सम्बन्धी भेद भाव नहीं रह जाता, शारीरिक एवं मानसिक श्रम में कोई विरोध नहीं रह जाता, परिश्रम करना केवल जीविकाका साधन ही नहीं रह जाता, बल्कि जीवनकी प्रथम आवश्यकता बन जाता है। व्यक्तिका सर्वाङ्गीण विकाश होनेके साथ-साथ उत्पादन शक्तियोंका भी विकाश होता है और सामाजिक सम्पत्तियोंके जितने स्रोत हैं, वे सब अबाध रूपमें प्रवाहित होने लगते हैं। इस स्थितिमें पहुंचकर ही साम्यवादी समाजके लिये यह संभव होता है कि वह पूंजीवादी समाजके संकीर्ण दृष्टिकोण से सर्वथा परे हो जाय और तब उसके अंकोंपर अंकित होता हैं प्रत्येक व्यक्तिसे उसकी योग्यताके अनुसार कार्य्य लिया जाय और प्रत्येक व्यक्तिको उसके प्रयोजनके अनुसार दिया जाय। From each according to his ability, to each according to his needs.

जब तक साम्यवादी समाज इस उच्चतर सोपानमें प्राप्त नहीं होता तब तक समाजवादियोंकी यह मांग होती है कि परिश्रम और खपतपर समाज एवं राष्ट्र द्वारा कठोर नियन्त्रण हो, और इस नियन्त्रणका आरम्भ पूंजीवादियोंको व्यक्तिगत सम्पत्ति का समाजीकरण, पूंजीवादियोंके ऊपर श्रमिकोंका नियन्त्रणसे हो और यह कार्य्य नौकरशाही राज द्वारा न होकर सशस्त्र श्रमिकोंके राज द्वारा हो।

यही समाजवाद (Socialism) और साम्यवाद (Commu-

nism) के बीच जो वैज्ञानिक भेद है, वह स्पष्ट हो जाता है। जिसे हम आमतौरसे सोशलिज्म कहते हैं, उसे ही मार्क्सने साम्यवादी समाजका 'प्रथम' या निम्न सोपान बताया है। जहांतक धनोत्पादनके साधनोंपर सार्वजनिक स्वत्वका प्रश्न है, 'कम्यूनिज्म' शब्द यहां भी लागू होता है; बशर्ते कि हम इस बातको स्मरण रखें कि यह पूर्ण कम्यूनिज्म या साम्यवाद नहीं है। कम्यूनिज्म अपने प्रथम सोपानमें आर्थिक दृष्टिसे सम्पूर्णताको प्राप्त नहीं होता और इस समयतक वह पूंजीवादके समस्त परम्परागत दोषोंसे मुक्त भी नहीं रहता। इसलिये कुछ समयतक कम्यूनिस्ट समाजके अन्दर केवल धनिक वर्गोंके अधिकार ही नहीं, बल्कि *धनिक वर्गीय राज भी वर्तमान रहता है।* हां, इस राजमें धनिक वर्गका अस्तित्व नहीं रह जाता।

यह जो सर्वहारा-दलका अधिनायकत्वके नामसे नया राष्ट्र स्थापित होगा, इसका काम क्या होगा? मार्क्सने लिखा है—इसका पहला काम होगा Land nationalism अर्थात् भूमिका राष्ट्रीय करण जो बड़े जमींदार हैं, उनसे जमीन छीनकर उसे राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूपमें परिवर्तन कर दिय जायगा। जमींदारोंसे छीनी गयी जमीनको खण्ड खण्ड करके सब लोगोंमें बांट नहीं दिया जायगा। सब जमीनपर राष्ट्रका अधिकार होगा और किसान समवाय पद्धति Co-operative के आधारपर उस जमीनको आबाद करेंगे।

इस नये राष्ट्रका दूसरा काम होगा—जिनकी आमदनी बहुत ज्यादा है उनपर अधिकसे अधिक आय कर लगाना।

तीसरा काम होगा—The abolition of the right of inheritance. अर्थात् पैतृक सम्पत्तिपर उत्तराधिकारका लोप। बाप, दादा कमा कर बैंकमें रुपया जमा कर गये हैं या जमीन जायदाद खरीद गये हैं इसलिये उनके वंशजोंको उस सम्पत्तिपर जन्मगत अधिकार होगा साम्यवादी राष्ट्रमें धनतान्त्रिक राष्ट्रका यह विधान लागू नहीं होगा। साम्यवादी समाजमें प्रत्येक व्यक्तिको अपने भरण-पोषणके लिये स्वयं परिश्रम द्वारा अर्जन करना होगा। दूसरेकी कमाईपर वह मौज नहीं उड़ा सकता। व्यक्तिगत परिश्रम द्वारा वह जो कुछ पैदा करेगा उसीपर उसका कायमी हक समझा जायगा —He has no right to live because another has earned what suffices for his maintenance. That alone is morally his which he gains by his personal effort. हमारे भरण-पोषणके लिये पर्य्याप्त धन दूसरेका कमाया हुआ है इसलिये उसपर जिन्दगी बसर करनेका हमारा अधिकार है इस बातको साम्यवादी न्याय्य नहीं मानते। उनकी दृष्टिमें व्यक्तिगत प्रयत्न द्वारा हमने जो उपार्जन किया है उसीपर हमारा नैतिक अधिकार हो सकता है।

चौथा काम होगा—जो इस नूतन राष्ट्रके विरुद्ध विद्रोह करेंगे उनकी सम्पत्तिको जब्त कर लेना।

पाँचवा काम होगा—राष्ट्रीय बैंककी सहायतासे रुपयेके लेन-देनके व्यवहार को सम्पूर्ण रूपसे राष्ट्रके अधिकारमें कर लेना।

छठों काम होगा—रेल आदि आवागमनके साधनापर राष्ट्रका एकाधिपत्य स्थापित्त करना।

सातवां काम होगा—कल-कारखानोंको राष्ट्रीय सम्पत्तिमें और गैर आबादी जमीनको आबादी जमीनमें परिणत करना और उनकी संख्यामें वृद्धि करना।

आठवां काम होगा—प्रत्येक स्वस्थ सबल मनुष्यको समाजके मंगलके लिये कर्म द्वारा समाज-सेवा करनेके लिये बाध्य करना; कल-कारखानोंमें छोटे-छोटे बच्चे काम करने नहीं पायंगे।

साम्यवादी समाजके प्रथम सोपानको संगठित और उसे यथार्थ रूपमें परिचालित करनेके लिये दो बातें विशेष रूपमें आवश्यक हैं—Accounting और Control अर्थात् हिसाब रखना और नियन्त्रण। समाजकी इस स्थितिमें उसके जितने नागरिक होते हैं, वे सब राजके वैतनिक नौकर बन जाते हैं। यह राज सशस्त्र श्रमिकोंका राज होता है। सब नागरिक एक ही राष्ट्रीय राज (National State) या श्रमिक-संघ (Syndicate) के नौकर और कर्मी बन जाते हैं। उनके लिये केवल इतना ही आवश्यक होता है कि वे समान रूपमें कार्य करें, काममें उनका जो हिस्सा हो, उसे नियमित रूपमें पूरा करें और उन्हें समान वेतन मिले। इस प्रकार जब अधिकांश नागरिक कामका हिसाब रखना और काम करनेवालोंपर तथा बुद्धिजीवी भद्र वर्गपर—जिनमें अब भी पूजीवादी समाजके संस्कार कायम रहते हैं—नियन्त्रण रखना सीख जाते हैं, तो यह नियन्त्रण सार्वजनिक,

साधारण और राष्ट्रीय बन जाता है, और इससे बचनेका कोई उपाय नहीं रह जाता। अब राज एक राजनीतिक राजके रूपमें नहीं रह जाता और राजनीतिक कार्योंका राजनीतिक स्वरूप नष्ट हो जाता है। जिस समयसे समाजके सब या अधिकांश लोग स्वयं राजका शासन करना सीख जाते हैं, इस शासन-कार्यको अपने हाथमें ले लेते हैं, मुट्ठीभर नगण्य पूंजीपतियोंपर पूंजीवादी-मनोवृत्ति धारण करनेवाले भद्र पुरुषों तथा पूँजीवाद द्वारा सम्पूर्ण रूपमें भ्रष्ट किये गये श्रमजीवियोंपर नियन्त्रण स्थापित कर लेते हैं, उस समयसे ही किसी प्रकारकी राज या सरकारका प्रयोजन लुप्त होने लगता है। गणतन्त्र जितना ही सम्पूर्ण होता जायगा, उतना ही वह उस क्षणके सन्निकट पहुंचता जायगा, जब उसकी आवश्यकता नहीं रह जायगी। सशस्त्र श्रमजीवियोंका 'राज'— जिसे हम यथार्थ रूपमें राज नहीं कह सकते—जितना ही गण-तान्त्रिक बनता जायगा, उतनी ही शीघ्रतासे वह क्षीण होने लग जायगा इस स्थितिमें पहुंचकर ही साम्यवादी-समाजके प्रथम सोपानसे द्वितीय सोपानमें परिवर्तित होनेका प्रवेश-द्वार उन्मुक्त हो जाता है और इसके साथ-साथ राजसत्ता सम्पूर्ण रूपसे क्षीण हो जाती है।

समाजवादी क्या चाहते हैं ?

समाजवाद नूतन रूपमें समाज-संगठनके लिये एक विशेष प्रकारकी नीति है। धनतंत्रवादके साथ इसका अहि-नकुल—साँप और नेवलेका सम्बन्ध है। इसका आर्थिक आदर्श है युक्ति-संगत आर्थिक व्यवस्था। एक ऐसी आर्थिक योजना जिसके द्वारा मनुष्य अपने प्रयोजनपर दृष्टि रख कर उत्पादन-प्रणालीको परिचालित कर सके। अबतक मनुष्य उन आर्थिक शक्तियोंके हाथकी कठपुतली बनता आ रहा है जिनकी सृष्टि उसने स्वयं की थी। कुछ समय तक तो समृद्धि एवं उन्नति देखी गयी—इसके बाद ही आर्थिक संकटका आरम्भ हुआ; जिसे किसी प्रकार भी मनुष्य टालनेमें समर्थ नहीं हो रहा है। विज्ञान-लक्ष्मीकी आराधना द्वारा प्रकृतिकी जड़शक्तियोंपर विजय प्राप्त करनेपर भी एकमात्र

सोवियेट रूसको छोड़कर और सब देशोंमें मनुष्य किसी अज्ञात रहस्यमय आर्थिक शक्तिकी कृपाका पात्र बन रहा है।

समाजवादी जिस समाज-व्यवस्थाकी स्थापनाके लिये संग्राम कर रहे हैं उसमें सामाजिक रूपमें सब मनुष्य समान होंगे। उसमें श्रेणी-संघर्ष द्वारा कोई मनुष्य निर्यातित एवं शोषित नहीं होगा। आधुनिक यंत्र-विज्ञानके आविष्कारके पूर्व मनुष्यके श्रमसे बहुत थोड़ा उत्पन्न होता था और उत्पादनके सहायक हथियार वगैरह इतने आधिक थे कि उस समय श्रम-विभाग और श्रेणी-विभाग अनिवार्य्य था। यंत्र-विज्ञानकी उन्नति और उत्पादनकी आधुनिक प्रणालीमें उन्नति होनेके साथ-साथ श्रेणी भेद क्रमशः बढ़ता हुआ अतिकी मात्रापर पहुंच गया है; किन्तु इसके साथ-साथ इसने अपने विनाशका मार्ग भी प्रस्तुत कर लिया है। आधुनिक उत्पादन-प्रणालीकी सम्भावना और मनुष्यके परिश्रमसे उत्पन्न वस्तुओंकी अधिकता एवं विशालताने श्रेणी-हीन समाजकी संस्थापना केवल सम्भव ही नहीं कर दिया है; बल्कि उसे अत्यावश्यक भी बना दिया है। श्रेणी-हीन समाजमें आर्थिक संकटके कारण उत्पन्न दुःख दुर्दशा एवं समाजवादी युद्ध लुप्त हो जायंगे और मनुष्य जातिको वास्तविक सुखका सन्धान मिलेगा।

समाजवादी व्यक्तिगत सम्पत्तिका अन्त कर देना चाहते हैं, इसका यह अर्थ नहीं है कि वे सब प्रकारकी व्यक्तिगत सम्पत्तिके विरोधी हैं, इसके विपरीत पूंजीवादके विरुद्ध उनकी सबसे बड़ी शिकायत यह है कि पूंजीवादी देशोंमें अधिकांश लोग पर्य्याप्त

"व्यक्तिगत निजी सम्पत्ति" से वञ्चित कर दिये गये हैं। समाजवाद देशके सैकड़े दस भाग लोगोंमें नौ भागको उसकी वर्तमान सम्पत्तिसे दसगुनी अधिक 'व्यक्तिगत निजी सम्पत्ति" प्राप्त करनेका सुयोग देना चाहता है। इस समय खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, माल असबाब, घर, बाग-बगीचा, सवारी इत्यादि के लिये जो सब चीजें उन्हे मिलती हैं उनकी अपेक्षा और भी अधिक परिमाणमें वे सब चीजें उन्हे मिलें; इसीके लिये समाजवाद प्रयत्न करता है। समाजवाद व्यक्तिविशेषके हाथसे उत्पादनके साधनोंको इसलिये छीन लेना चाहता है ताकि सब लोगोंको आवश्यकतानुसार निजी सम्पत्ति दी जा सके। सब लोग आवश्यकतानुसार सम्पत्तिका उपभोग कर सकें; इसके लिये और कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं है।

समाजवादियोंकी दृष्टिमें व्यक्तिगत सम्पत्ति दो प्रकारकी हो सकती है. एक प्रकारकी व्यक्तिगत सम्पत्ति हुई धनोत्पादनके उपायोंपर व्यक्ति विशेष या समुदाय विशेषका अधिकार। कारखाना, खान, जमीन, जायदाद, ये सब इसी प्रकारकी व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं। दूसरे प्रकारकी व्यक्तिगत सम्पत्ति हुई नित्यके व्यवहारकी चीजें, खाने-पीनेकी चीजें, कपड़ा, पोशाक, घर, बाग, माल-असबाब, सवारी, मनोरञ्जनके साधन, समय बचानेके उपाय तथा इसी तरहकी चीजें जो काममें लायी जा सकती हैं।

इन दो प्रकारकी व्यक्तिगत सम्पत्तियोंमें जो भेद है और उनको जो विशेषता है, उसे यदि हम अच्छी तरह समझ जायं

तो व्यक्तिगत सम्पत्तिके सम्बन्धमें समाजवादको लेकर बहुत-से लोगोंमें जो भ्रान्त धारणा फैली हुई है, वह सहज ही दूर हो जा सकती है। पहले प्रकारकी व्यक्तिगत सम्पत्ति अर्थात् "उत्पादनके साधन" से उसके मालिकोंको आय होती है। दूसरे प्रकारकी व्यक्तिगत सम्पत्ति साधारण व्यवहारकी चीजें होती हैं, जो लोगोंके काममें आती हैं या लोग उनका भोग करते हैं; इनसे किसी प्रकारकी आमदनी नहीं होती।

मान लीजिये कि किसी मोटरगाड़ीके कारखानेमें आपका पांच हजारका शेयर है; तो इस शेयरके मुनाफेसे आपको आमदनी हो सकती है। किन्तु आपके पास अगर पांच हजारकी कोई मोटरगाड़ी हो, तो उसका मालिक होनेके नाते आपको कोई एक पैसा नहीं देगा, उल्टे गाड़ी रखनेमें आपको टैक्स देना पड़ेगा; और खर्च भी होगा।

"उत्पादनके साधन" और "व्यवहारकी चीजों" में यही फर्क है। मोटरके कारखानेके शेयरोंसे आपको मुनाफा होता है। कारण, कारखाना देशके धनोत्पादनके उपायोंमेंसे है। किन्तु मोटरगाड़ीसे आपको कोई आमदनी नहीं होती, क्योंकि वह व्यवहारकी वस्तु है।

इसलिये पूंजीवादका उच्छेद करके समाजवादी जिस साम्यवाद या समाजवादकी स्थापना करना चाहते हैं, उसका मुख्य उद्देश्य पहले प्रकारकी व्यक्तिगत सम्पत्तिका लोप करके दूसरे प्रकार की व्यक्तिगत सम्पत्तिमें वृद्धि करना है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि "उत्पादनके साधनों" को उनके वर्तमान मालिकोंसे छीनकर उनकी व्यवस्था किस प्रकार की जायगी ? जमीन, खान, कारखाना आदिको क्या राष्ट्र के अधीन रखकर राजकर्मचारियों द्वारा उनकी परिचालना की जायगी ? समाजवादमें उत्पादनके साधनोंपर सर्वसाधारणका अधिकार होनेका अर्थ यह नहीं है कि देशमें सब प्रकारके प्रबन्ध राष्ट्रके अधिकारमें होंगे। बड़े-बड़े कारबार--रेल, तार, डाक, बिजली आदि राष्ट्रके परिचालनमें होंगे और दूसरे छोटे-छोटे स्थानीय व्यवसायोंका परिचालन स्थानीय संस्थाओं--म्युनिसिपैल्टिी, प्रान्तीय कौंसिल तथा इसी तरहकी अन्यान्य संस्थाएं--द्वारा होगा। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि सोशलिज्म या समाजवादके अन्दर समाजमें पूंजीवादी समाजकी तरह ही नाना प्रकारके वाणिज्य-व्यवसाय-संघ संगठित होंगे, इस प्रकारके संघोंका गठन करके सोशलिस्ट समाजका कार्य शुरू किया जायगा। इसके बाद समाजकी क्रमशः जिस प्रकार उन्नति होती जायगी, जनसाधारण द्वारा अधिकृत एवं परिचालित संस्थाएं भी उसी प्रकार उन्नतसे उन्नततर होती जायंगी।

सोशलिस्ट समाजमें जितनी अर्थ-सम्पत्ति उत्पन्न होती है, उसके हिसाबपर ही मजदूरोंकी दर निर्भर करती है। देशका उत्पादित धन जिस परिमाणमें बढ़ेगा, देशके श्रमजीवियोंकी मजदूरी भी उसी अनुपातसे बढ़ेगी। किन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि सबको एकसमान मजदूरी दी जाती है।

समाजवादी राष्ट्रमें भी कुशल श्रमजीवीको अनाड़ी श्रमजीवीसे अधिक मजदूरी मिलती है। इञ्जीनियरिंग कारखानेमें सुदक्ष कारीगर या मिस्त्रीको अन्य श्रमिकोंसे अधिक वेतन मिलता है। आफिसके मैनेजर, डाक्टर इत्यादिको अनभिज्ञ श्रमिकोंकी अपेक्षा अधिक वेतन मिलता है। कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि समाजवादमूलक समाज-व्यवस्थामें सब लोगोंके लिये एकसमान मजदूरी मिलनी सम्भव है, और इस प्रकारकी समाज-व्यवस्थामें सबको एकसमान मजदूरी देनी उचित है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। मार्क्सने अपनी पुस्तक "The Critique of the Gotha Programme" में स्पष्ट रूपसे यह बता दिया है कि समाजवादी राष्ट्रमें भी सब प्रकारके श्रमजीवियोंकी मजदूरी एकसमान नहीं हो सकती, और ऐसा होना उचित भी नहीं है।

वर्तमान पूंजीवादी राष्ट्र-व्यवस्थाके विरुद्ध समाजवादियोंकी जो प्रधान आपत्ति है, वह किस बातको लेकर ? क्या इसलिये कि, एक कारीगरको और एक साधारण मजदूरको एकसमान वेतन नहीं मिलता ? विभिन्न श्रेणीके श्रमजीवियोंके वेतनमें जो असाम्य देखा जाता है, क्या उसे ही दूर करनेके लिये यह आन्दोलन चलाया गया है ?

नहीं, बात ऐसी नहीं है। समाजवादियोंकी प्रधान आपत्ति इस बातको लेकर है कि, वर्तमान समाज-व्यवस्थामें जो लोग कोई काम नहीं करते, जिनकी दृष्टिमें शारीरिक परिश्रम गर्हित है, वे ही सबसे अधिक मजदूरी पाते हैं। मुट्ठीभर आलसियोंका एक

ऐसा दल है, जो जीविकाके लिये किसी प्रकारका शारीरिक परिश्रम नहीं करता, जो परिश्रम न करके भी अतुल ऐश्वर्यका मालिक बना हुआ है और सब प्रकारके सुखोपभोग जिसे सहज ही उपलब्ध हैं। इसी आलसी पी० पू० फी० सू० दलके विरुद्ध समाजवादियोंकी नालिश और फरियाद है। यही दल आज सबसे अधिक वेतन पा रहा है। इसलिये समाजवादियोंकी आपत्ति मजदूरीकी कमी-वेशीको लेकर नहीं है, बल्कि असल आपत्ति शोषण-प्रथाके विरुद्ध है—दूसरेकी कमाईपर धनी बननेके विरुद्ध है। यदि एक श्रमजीवी दूसरेकी अपेक्षा अधिक निपुण है, अपनी कर्मकुशलताकी बदौलत वह दूसरे मजदूरकी अपेक्षा अधिक मूल्यका माल उत्पन्न करता है, तो वह अधिक मजदूरी अवश्य पायगा। यहाँ शोषणकी बात उठती ही नहीं। इस प्रकारके असाम्यमें कोई दोष नहीं हो सकता। असल दोष तो तब उत्पन्न होता है, जब एक व्यक्तिके अधिकारमें उत्पादनके साधन होते हैं, वह स्वयं कुछ नहीं करता और वेतन पाता है एक मजदूरकी तुलनामें हजारगुना अधिक। इसीका नाम शोषण है। कारण, वह व्यक्ति दूसरेके परिश्रमका शोषण करके बड़ा बना है। उसका विपुल वैभव कहीं आसमानसे टपक नहीं पड़ा है। लाखों मजदूरों के श्रमका शोषण करके और उनके न्याय्य वेतनका अधिकांश हड़प कर वह ऐश्वर्यशाली बना है।

समाजवाद इस शोषण-क्रियाको—दूसरोंके परिश्रमपर ऐश्वर्यशाली बननेके सुयोगको समूल नष्ट कर देता है। एक निपुण

कारीगरको दूसरे साधारण मजदूरकी अपेक्षा भले ही दुगुना या दसगुना अधिक वेतन मिले, किन्तु शोषण-प्रथाका अस्तित्व नहीं रह जाता। वेतन अधिक देना तो श्रमिकोंके कार्यका उचित मूल्य देना है; यह किसी प्रकारके अन्याय द्वारा प्राप्त धन तो नहीं है।

सोवियट रूसमें भी व्यक्तिगत मूलधनका उच्छेद-साधन किया गया है, व्यक्तिगत निजी सम्पत्तिका नहीं। सोवियट रूसमें आप बैंकमें रुपया जमा करके सूद नहीं कमा सकते, जमीन नहीं खरीद सकते, व्यवसायमें रुपया लगाकर या शेयर खरीदकर डिविडेण्ड नहीं पा सकते। किन्तु अपनी कर्मकुशलताके कारण आप जो अधिक वेतन पाते हैं, उससे आप अच्छे मकानमें रह सकते हैं, मोटरगाड़ी सवारीमें रख सकते हैं या और तरहसे ज्यादा आराममें रह सकते हैं। वहां एक आदमीको पचास रुपये वेतन मिले और दूसरेको पांचसौ, इसमें कोई बाधा नहीं है; और जिस व्यक्तिको पांचसौ वेतन मिलता है, वह अगर अच्छा खाना नहीं खायगा, अच्छी पोशाक नहीं पहनेगा, सवारीके लिये मोटरगाड़ी नहीं खरीदेगा, तो रुपया लेकर करेगा क्या ? क्योंकि रुपया वह जमा नहीं कर सकता, किसी व्यवसायमें लगा नहीं सकता; इसलिये खर्च तो उसे करना ही होगा।

संसारके एकमात्र साम्यवादी राष्ट्र सोवियट रूसमें असाम्य की यह बात सुनकर कुछ लोग चौंक उठेंगे और शायद यह कहेंगे

कि साम्यवादकी बात तो कल्पनामात्र है, कोरी भावुकता है, वास्तव जगत्‌से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। यह असाम्य जो आप देख रहे हैं, वह आपके दृष्टिकोणकी भूल है। यह Paradox या विरोधाभास है। असलमें रूसमें व्यावहारिक साम्य है, आदर्शगत सम्पूर्ण साम्य नहीं है। आदर्श और व्यावहारिकमें जो भेद है, वही भेद इस साम्य और असाम्यमें है। सन् १९३४ में स्टैलिनने अपने एक भाषणमें कहा था—"By equality marxism understands not the levelling of personal needs but the elimination of classes."—अर्थात् *"मार्क्सवादमें समानताका अर्थ यह नहीं है कि सब लोगोंकी व्यक्तिगत आवश्यकताएं एकसमान कर दी जायं, बल्कि यह कि श्रेणी-भेदका अन्त कर दिया जाय।"* इसी आदर्शके अनुसार आज सोवियट रूसमें समाजके अन्दर श्रेणी-भेद नहीं रह गया है। संसारके राष्ट्रोंमें वह 'आदर्श' राष्ट्र इसलिये है *कि वहां दारिद्र्यका क्रन्दन एवं हाहाकार नहीं सुनाई पड़ता।*

साम्यवादके सम्बन्धमें एक आक्षेप यह किया जाता है कि यह मनुष्यकी प्रकृतिके प्रतिकूल है। इसमें मनुष्यकी उद्भाविनी-शक्तिको प्रोत्साहन नहीं मिलता; और इस प्रकार उसकी प्रतिभाका पूर्ण विकास सम्भव नहीं हो पाता। किन्तु मनुष्यको उसके कार्यके *मूल्यके अनुसार उचित वेतन देना क्या प्रकृतिके विरुद्ध है?* साम्यवादके विचारसे किसीको परिश्रम किये विना मजदूरी नहीं मिल सकती। साधारण श्रमिकोंको इतनी मजदूरी मिलेगी,

जिससे वे अपना तथा अपने परिवारका भरण-पोषण अच्छी तरह स्वच्छन्द भावसे कर सकें। साधारण श्रमिकोंकी अपेक्षा जो लोग विशेष कर्मकुशल और कारीगर होंगे, उन्हें कुछ अधिक वेतन मिलेगा। इस व्यवस्थामें मनुष्यकी प्रकृतिके विरुद्ध कौनसी बात है ?

इसपर कुछ लोग यह कह सकते हैं कि साम्यवादी समाजमें जो असाधारण प्रतिभाशाली लेखक, कवि, कलाकार, अभिनेता, वैज्ञानिक और आविष्कारक होंगे, वे भी तो एक विशेष श्रेणीके श्रम-जीवी ही समझे जायंगे। उन्हें अपने कार्यमें प्रेरणा कहांसे मिलेगी? किस पुरस्कारकी आशामें वे नये-नये आविष्कारोंकी चेष्टा करेंगे ?

जो लोग अपनी असाधारण प्रतिभा द्वारा नये-नये आविष्कार करेंगे, उन्हें साम्यवादी समाजमें उपयुक्त पारिश्रमिक और पुरस्कार भी दिया जायगा। कलाकार, लेखक, कवि, अभिनेता सब विशेष पुरस्कार प्राप्त कर सकते हैं। उनकी प्रतिभाका उचित आदर हो, इस बातको साम्यवादी भी मानते हैं। अपनी प्रतिभाकी बदौलत समाजको वे जो अमूल्य सम्पत्ति दान करते हैं, इसके लिये उन्हें उत्तम रूपमें समादृत एवं पुरस्कृत किया जाय, इसका तो साम्यवाद विरोध नहीं करता। मनुष्य-मनुष्यमें जन्मगत और मानसिक प्रबलताकी दृष्टिसे जो प्रकृतिगत वैषम्य एवं तारतम्य देखा जाता है, उसे साम्यवादी भी स्वीकार करते हैं। वे जिस वैषम्यको दूर करना चाहते हैं, वह है श्रेणीगत वैषम्य। धनतान्त्रिक समाजमें प्रत्येक व्यक्तिको आत्मविकासका पूर्ण सुयोग

नहीं मिलता। इस समाजमें अधिकांश लोग शोषित बनकर रहते हैं। श्रेणी-भेद दूर होनेपर प्रत्येक व्यक्तिको आत्मविकासका, अपने व्यक्तित्वको परिपूर्ण रूपसे विकसित करनेका सुयोग मिलेगा। भावी युगका मनुष्य यन्त्रवत् एक ही सांचेपर ढला हुआ नहीं होगा। वह होगा सबल, स्वाधीन एवं मुक्त मनुष्य, और अपनी बुद्धि, प्रतिभा एवं कर्मशक्तिका विकास करनेमें समर्थ होगा।

कुछ समय पहले सोवियट रूसके सरकारी पत्र 'प्रवदा' ने "Socialism and Equality"—अर्थात "समाजवाद और समानता" शीर्षक एक लेखमें लिखा था:—"*Socialism in* no sense tends to ignore or suppress all the varied individual talents, urges, tastes and requirements *of human beings. On the contrary, socialism pre*sents an unpreceden ted possibility for the development of such capacity, abilites and talents." अर्थात् "मनुष्य-मनुष्यमें जो प्रकृतिगत बुद्धि एवं गुणजनित भेद है, उसे समाजवाद अस्वीकार नहीं करता, बल्कि उसकी वृद्धि एवं गुणोंके विकासमें सहायता पहुंचाता है।" साम्य और असाम्यके प्रति सोवियट रूसका क्या मनोभाव है, यह इससे स्पष्ट हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाजवाद या साम्यवाद कल्पना-राज्यकी कोई वस्तु न होकर एक व्यावहारिक मतवाद है। इतिहास, राजनीति, अर्थनीति, मानव-जीवन तथा मनुष्यकी आशा-

आकांक्षाओंकी विशद रूपमें व्याख्या करनेका यह एक मार्ग है। इसे एक साथ ही मतवाद (Theory) और कर्म आह्वान (call to action) भी कह सकते हैं। समाजवादी समाज-व्यवस्थाके स्थापित हो जानेसे ही प्रत्येक मनुष्य पूर्ण महापुरुष बन जायगा या मनुष्यके सारे दुःख-द्वन्द, बाधाविघ्न नष्ट हो जायेंगे, इस प्रकारका आशारूपी हवाई महल समाजवादी मनुष्यके सामने खड़ा करनेकी चेष्टा नहीं करते। वे केवल इतना ही चाहते हैं कि सबको समान सुयोग मिले। इस सुयोगका सदूव्यवहार हम कहांतक कर सकेंगे, यह निर्भर करता है बिलकुल हमारे ऊपर। साम्यवाद सब मनुष्योंके लिये काम जुटा सकेगा; जो काम करने *लायक होंगे और काम करना चाहेंगे उन्हें समाजवाद यह विश्वास* दिलायेगा कि वे अपनी रुचि और शक्तिके अनुकूल काम करके स्वच्छन्द रूपमें जीविका-निर्वाह कर सकते हैं। समाजवादी राष्ट्रमें कोई भी व्यक्ति अपने कार्य-विभागके सर्वोच्चपदपर अपनी योग्यता एवं कर्मकुशलताकी बदौलत पहुंच सकता है। समाज-वाद प्रत्येक मनुष्यको इस प्रकारके सुयोग एवं सुख-सुविधाएं प्रदान करता है जिससे वे मनुष्य रूपमें अपने मनुष्यत्वका विकास कर सकें, पूर्णता प्राप्त कर सकें और जीवनके दिन निश्चिन्त भावसे व्यतीत कर सकें। साम्यवाद पृथिवीसे दारिद्र या युद्ध-विग्रह और कोटि-कोटि मनुष्यके जीवनमें अन्न-वस्त्रकी जो अनिश्चि-तता बनी रहती है उसे दूर कर सकता है। इससे अधिक या इससे कम करनेकी शक्ति उसमें नहीं है।

जो दुःख-दुर्दशाग्रस्त हैं, जो शोषित एवं अत्याचार-पीड़ित हैं, जो सर्वहारा हैं, "बन्धन रूपी शृङ्खलाओंके सिवा और कुछ जिनके पास खोनेको नहीं है"—श्रेणी-विहीन समाज-व्यवस्था उन्हींका आदर्श एवं ध्रुव लक्ष्य है। यही सर्वहारा दल पूंजीपतियों द्वारा उत्पीड़ित जनसमुदायके साथ मिलकर श्रेणी-हीन समाजका गान करेगा—एक ऐसे अभिनव मानव-समाजका, जिसमें मनुष्य सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो जायगा और जिसका राजनीतिक आदर्श होगा सार्वजनिक कल्याण तथा सभ्यता एवं संस्कृतिके आधारपर स्वाधीनता। इस उद्देश्यकी सिद्धिके मार्गमें जो सबसे बड़ी बाधा है उस बाधाको अवश्य दूर करना होगा; और वह बाधा है पूंजीवादी प्रथाके आधारपर उत्पादनकी पद्धति।

साम्यवाद और गांधीवाद

हमारे देशके राष्ट्रकर्मी इस समय दो विभिन्न भावधाराओंके प्रवाहसे होकर गुजर रहे हैं और इन दोनोंके बहिरङ्गमें उन्हे जो विरोध, असामञ्जस्य और संघर्ष देख पड़ते हैं, उनसे वे सहज ही यह निश्चय नहीं कर पाते कि कौन पथ उनके लिये श्रेय है। इस प्रश्नकी जटिलता इस बातसे और भी बढ़ जाती है कि दोनों भावधाराओंका मूल उद्गम-स्थान एक ही है और दोनोंके आदर्श एवं लक्ष्यमें भी विशेष प्रार्थक्य नहीं है। हां, साध्य अधिकांशमें एक होनेपर भी दोनोंके साधन एक नहीं हैं, उनमें आकाश-पातालका अन्तर है। ये दो भावधाराएं हैं साम्यवाद और गांधीवाद। इन दो 'वादों' को लेकर इधर हमारे देशमें आलोचना-प्रत्यालोचनाएं भी काफी हुई हैं और इस समय भी हो रही

हैं, और देशके लिये ऐसा होना स्वाभाविक भी है; क्योंकि इस समय हमारा देश राष्ट्रीयताके एक ऐसे सन्धिक्षणमें प्रवेश कर रहा है, जब कि उसे अपना आदर्श ही नहीं, बल्कि उस आदर्श तक पहुंचनेका अपना गन्तव्य पथ भी निश्चित कर लेना है, जिससे उसके सम्बन्धमें किसी प्रकार सन्देह, संशय और द्विधा न रह जाय।

कम्यूनिज्म या साम्यवादके प्रवर्त्तक लेनिन और अहिंसात्मक सत्याग्रह संग्रामके प्रवर्त्तक गांधी, दोनों ही युग-मानव कहे. जा सकते हैं। दोनों ही संसारके दो महादेशोंमें विशाल जन-समुदायके बीच युगान्तर उपस्थित करनेमें समर्थ हुए हैं, हालांकि दोनोंकी विचार-धाराएं एवं कर्म-प्रणालियां एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं। दोनोंका ही आदर्श है सर्वसाधारण जनका कल्याण, दोनोंके ही हृदयके अन्तस्तलसे जो संगीत-ध्वनि समुत्थित हुई है वह है दलित, लांछित, निपीड़ित एवं शृङ्खलित मानवताकी वेदनाका मुक्ति संगीत। दोनोंने ही अपने देशकी अन्नहीन, वस्त्रहीन, उपेक्षित जनताकी सेवामें, उसकी बन्धन-मुक्तिमें अपने-आपको समर्पण कर दिया, अपने अस्तित्वको इस महामानवताके अस्तित्वमें विलीन कर दिया और इसके लिये समस्त दुःख एवं आपदाओंको अम्लान चित्तसे वरण करते हुए जीवनव्यापी तप एवं त्यागकी साधनामें अपनेको संलग्न कर दिया। जिस प्रकार लेनिनने रूसकी दलित, क्षुधित एवं अत्याचार-पीड़ित जनताकी मुक्तिके लिये अपने जीवनको उत्सर्ग कर दिया था,

उसी प्रकार गांधीजी भी विराट् भारतीय जनताको दासत्व एवं दारिद्र्यके बन्धनसे मुक्त करनेके लिये अन्याय एवं अत्याचारके विरुद्ध संग्राम करते हुए अपने जीवनको देशके लिये समर्पित कर चुके हैं। इस प्रकार जहांतक दीन, दरिद्र एवं निपीड़ित जनताको मुक्तिका प्रश्न है, दोनोंके आदर्शमें कोई अन्तर नहीं है। गांधीजी सर्वसाधारण जनका, राष्ट्रके निम्नसे निम्न एवं अधमसे अधम व्यक्तिका कल्याण चाहते हैं। उनका लक्ष्य केवल राजनीतिक स्वाधीनता ही नहीं, बल्कि जनताकी आर्थिक स्वाधीनता भी है। करांची कांग्रेसमें जनताके मौलिक अधिकारके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव पास किया गया था और जिसके प्रस्तावक स्वयं गांधीजी थे, उसके आरम्भमें ही कहा गया है—In order to end the exploitation of the masses political freedom must include real economic freedom of the starving millions. अर्थात् जनताको शोषणसे मुक्त करनेके लिये राजनीतिक स्वाधीनताके साथ करोड़ों बुभुक्ष जनताकी वास्तविक आर्थिक स्वाधीनताका भी समावेश होना चाहिये। पण्डित जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गांधीके बीच जो ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार हुआ था, उसमें अपने मतको स्पष्ट करते हुए गांधीजीने लिखा था—"I am also in whole-hearted agreemen with you when you say that without a nationa revision of vested interests the condition of th masses can never be improved." अर्थात् मैं आपसे

इस कथनसे पूर्णतया सहमत हूं कि जबतक कायमी हकवालोंके स्वार्थोंमें वास्तविक परिवर्तन नहीं होता, तबतक जनताकी दशा सुधर नहीं सकती।" सम्पत्तिका वर्तमान असम विभाजन, मुट्ठीभर धनिकोंका विपुल ऐश्वर्य्य और कोटि-कोटि जनताकी दरिद्रता, एक ओर प्राचुर्य और दूसरी ओर,हा अन्न ! हा अन्न ! का मर्मान्तक हाहाकार ! इस अस्वाभाविक अवस्थाका अन्त गांधीजी भी देखना चाहते हैं, यह ऊपरके उद्धरणोंसे स्पष्ट है। भेद केवल इस बातको लेकर है कि जहां साम्यवादी धनिकोंको उनकी सम्पत्तिसे बेदखल (Expropriation) कर देना चाहते हैं, वहां गांधीजी उनके अधिकारोंको इस प्रकार नियन्त्रित कर देना चाहते हैं, जिससे उनके लिये शोषण द्वारा अनुचित रूपमें धनार्जन करनेका मौका न रह जाय; और इस प्रकार, समाजमें इस समय जो उत्कट धन वैषम्य देख पड़ता है, वह दूर हो जाय। दूसरे शब्दोंमें इसका अभिप्राय यह है कि गांधीवादके अनुसार समाजमें श्रेणीभेद रहना स्वाभाविक है, किन्तु यह भेद इतना उत्कट नहीं होगा, जिससे एक-दूसरेको अपना स्वाभाविक शत्रु समझें। गांधीवाद श्रेणीभेदको कायम रखते हुए भी क्षमताशाली द्वारा जनतापर होनेवाले अत्याचार, उत्पीड़न एवं शोषणको मिटा देना चाहता है। और यदि दोनोंमें सामञ्जस्य स्थापित न हो सके तो गांधीजी इसके लिये भी तैयार हैं कि 'Every interest that is hostile to their interest must be revised or must be subsided if it is not capable

of rivescon. अर्थात् जनताके स्वार्थके विरुद्ध और जितने प्रकारके स्वार्थ हैं, उन सबमें हेरफेर करना होगा और यदि हेर-फेर करने लायक़ न हो तो उन्हें दबा देना होगा।"

साम्यवादमें धनी और दरिद्रके स्वार्थ परस्पर—विरोधी हैं। एकके स्वार्थमें दूसरेका स्वार्थ-हानि निहित है, यह बात स्वाभाविक-सी मान ली गयी है। किन्तु गांधीजी ऐसा नहीं मानते। उनका कहना है कि मनुष्यके रूपमें अन्ततः धनी और दरिद्र, दोनोंके स्वार्थ एक हैं। व्यष्टि एवं समष्टिके बीच जो विरोध देख पड़ता है वह गौण है, और दोनोंका समन्वय ही प्रधान है। व्यष्टिमें समष्टिके साथ एकत्व-बोधकी जो अनुभूति है, उसमें विरोधके लिये स्थान ही नहीं रह जाता। समग्र मानव-जातिके कल्याणमें जब व्यक्ति-विशेषका कल्याण निहित है, तो फिर दोनोंके स्वार्थ भी समान हैं। जहां वे परस्पर-विरोधी हैं वहा साम्य स्थापित करके उस विरोधका अन्त करना होगा। किन्तु प्रश्न यह है कि इस प्रकार समाजके धनी और दरिद्र वर्गोंके बीच भेद मिटते-मिटते अन्तमें भेद ही कहां रह जायगा? निर्धन श्रमजीवियोंके परिश्रमका उचित मूल्य न देकर ही तो धनवान धन सञ्चय करते हैं। अपने किसी-किसी लेखमें गांधीजीने भी इस तथ्यको स्वीकार किया है। Nature produces enough for our wants from day to day, and if only every body took enough and no more, there will be no poverty in the world, and there will be no man

dying of starvation in the world. अर्थात् प्रकृति हमारी प्रत्येक दिनकी आवश्यकताओंके लिये पर्याप्त उत्पादन करती है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रयोजनके अनुसार सम्पत्ति ग्रहण करे, उससे अधिक नहीं, तो संसारमें दरिद्रता नहीं रह जायगी और कोई मनुष्य भूखों नहीं मरेगा।" जीवनकी जो अत्यावश्यक वस्तुएं हैं उनके उत्पादनके साधनोंपर सर्वसाधारण जनताका नियन्त्रण होना चाहिये, इस बातको गांधीजी स्वीकार करते हैं। उन्होंने अपने एक लेखमें लिखा था—'जिस प्रकार भगवानके दिये हुए जल और वायुका सब लोग स्वतन्त्रतापूर्वक उपभोग कर सकते हैं उसी प्रकार इन साधनोंका उपभोग भी सबके लिये अबाध होना चाहिये। इन्हें दूसरोंके शोषणके लिये वाहन नहीं बनाया जाना चाहिये।" गोलमेज सभामें भाषण करते हुए गांधीजीने यह भी कहा था कि स्वराज्य स्थापित होनेपर राज (State) जनता के (The masses as opposed to the classes) मंगलके लिये ही परिचालित होगा और व्यवस्थापिका परिषद्का सबसे पहला काम होगा धनी और निर्धन श्रेणीके बीच जो आर्थिक उत्कट वैषम्य है उसे दूर करके सब लोगोंको यथासम्भव सम्पन्न बनानेका उद्योग करना और जिनके पास कुछ नहीं है उन्हें बिना मूल्य जमीन देना। गांधीजीके स्वराज्यका जो आदर्श है, उसमें सब लोगोंको शारीरिक परिश्रम करना होगा, जहाँ प्रयोजनसे अधिक संचय करनेमें लोग घृणाका बोध करेंगे, वहाँ धनी और निर्धन—ये दो वर्ग किस

प्रकार रह जायंगे, यह समझमें नहीं आता। किन्तु समाजमें इन दो वर्गोंका अस्तित्व कायम रहेगा, इस बातको वह स्पष्ट रूपमें स्वीकार करते हैं:—"I cannot picture to myself a time when no man shall be richer than another. But I do picture to myself a time when the rich will spurn to enrich themselves at the expense of the poor and the poor will cease to envy the rich. Young India, 7-10-1926" "मैं किसी ऐसे समयकी कल्पना नहीं कर सकता जब कि एक आदमी दूसरेकी अपेक्षा अधिक धनी नहीं होगा। किन्तु मैं ऐसे समयकी कल्पना अवश्य करता हूं जब कि गरीबोंका शोषण करके धनवान बननेमें धनीजन घृणा बोध करेंगे, और निर्धन धनिकोंकी समृद्धिपर ईर्ष्या नहीं करेंगे। "I am for the establishment of the right relations between capital and labour etc I do not wish for the supremacy of the one over the other. I do not think there is any natural antagonism between the two. Young India 8-1-1925." अर्थात् मैं पूंजीवादी और श्रमजीवीके बीच उचित सम्बन्ध स्थापित होनेका पक्षपाती हूं। मैं एकके ऊपर दूसरेका प्रमुत्व नहीं चाहता। मैं यह नहीं समझता कि दोनोंके बीच कोई स्वाभाविक वैर-विरोध है।" एक बार लखनऊमें जमींदारोंकी एक सभामें गांधीजीने जमींदारों को यह उपदेश दिया था कि वे अपनेको प्रजाकी संपत्तिके ट्रस्टी

समक्ष ;आपने कहा था–"I do not think you can have any possible objection to holdingy our properties for the benefit of Ryots" गांधीजीके इस ट्रस्टीशिपके सिद्धान्त में शोषणका भाव नहीं होनेपर भी धनोत्पादनके साधनोंपर मुट्ठी भर धनवानोंका अधिकार मान लिया गया है। किन्तु हालमें "हरिजन" पत्रमें गांधीजीका "Accumulating evidence" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें जमींदारोंके विरुद्ध कुछ कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओंके उग्र एवं अत्यन्त कटु प्रचार-कार्यका प्रतिवाद करते हुए उन्होंने लिखा था-"In saying this I do not wish to suggest that the land does not belong to the worker on it. I endorse the socialist theory of possession"—"Harijan" 17-9-1938. अर्थात् जमींदारोंके विरुद्ध कांग्रेस कर्मियोंके आचरणका प्रतिवाद करते हुए मैं यह कहना नहीं चाहता कि जमीन किसानोंकी नहीं है। समाजकी संपत्तिके ऊपर किसका अधिकार होना उचित है, इस विषयमें समाजवादियोंका जो मत है, वही मत मेरा भी है।" समाजवादी व्यक्तिगत संपत्तिका उच्छेद चाहते हैं; अर्थात् धनोत्पादनके साधनोंपर व्यक्ति-विशेष या समुदायविशेषके मालिकाना हकके बदले सम्पूर्ण समाजका मालिकाना हक कायम करना चाहते हैं। समाजवादके अन्तर्गत अर्थनीतिका यह एक मूल सिद्धान्त है। इस विषयमें गांधीजी सोशलिस्टोंके साथ सहमत मालूम होते हैं। कुछ सोशलिस्ट और कम्यूनिस्टोंके साथ वार्तालापके प्रसंगमें

गांधीजीने कहा है "Contrariwise, I know socialists and communists who will not hurt a fly but who believe in this universal ownership of instruments of production. I rank myself as one among them." Harijan 10 12-1938 अर्थात् दूसरी ओर मैं ऐसे अनेक सोशलिस्ट और कम्यूनिस्टोंको जानता हूं, जो एक मक्खीको भी चोट पहुंचाना नहीं चाहते किन्तु धनोत्पादनके साधनोंपर सार्वजनिक अधिकार होना चाहिये, इस लक्ष्यमें विश्वास करते हैं। इस प्रकारके सोशलिस्ट और कम्यूनिस्टोंमें मैं भी अपनेको एक समझता हूं।"

गांधीजीके इन सब कथनोंपर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि चरम आदर्शके सम्बन्धमें उनकी धारणा स्पष्ट होनेपर भी उस लक्ष्यतक पहुंचनेका पथ क्या होगा, इस सम्बन्धमें उनका कोई स्पष्ट निर्देश मालूम नहीं होता। जो बहुत दिनोंसे चला आ रहा है, उसका समर्थन करनेकी वह चेष्टा करते हैं, और जब उसे किसी प्रकार भी कायम नहीं रखा जा सकता तभी उसका परित्याग करनेके लिये राजी होते हैं, अन्यथा नहीं। व्यक्तिगत रूपमें उन्होंने दारिद्र्य-व्रत ग्रहण किया है, संचय-वृत्तिका परिहार किया है, शारीरिक परिश्रमको यज्ञके समान प्रयोजनीय समझते हैं; इससे चरम लक्ष्यके सम्बन्धमें उनका मत स्पष्ट हो जाता है; जो कुछ अस्पष्टता रह जाती है, वह बीचकी अवस्थाको लेकर ही।

यहांतक तो 'कम्यूनिज्म और गांधीवाद' के सिद्धान्तोंपर विचार हुआ, अब हम दोनोंकी कार्य-प्रणालियोंपर विचार करें, क्योंकि लेनिन और गांधीजीकी कार्य-प्रणालीमें आकाश-पाताल का अन्तर है। गांधीजी सम्पूर्ण अहिंसा--मनसा, वाचा, कर्मणा अहिंसाको अपना एकमात्र अस्त्र मानते हैं। हिंसा मात्रमें उनको अणुमात्र भी विश्वास नहीं है। अहिंसामें उनका विश्वास इतना अखण्ड है कि वे अहिंसाको मानव-धर्म और हिंसाको पशु-धर्म मानते हैं और इसकी शक्तिके सम्बन्धमें कहते हैं— "Non-violence resists with all the force of the soul the will of the tyrant. One single man can thus defy an empire and bring about its downfall. अर्थात् "अहिंसा सम्पूर्ण आत्मबल द्वारा उत्पीड़ककी संकल्प-शक्तिका प्रतिरोध करती है। इस प्रकारका एक भी अहिंसा-व्रतधारी व्यक्ति समग्र साम्राज्य-शक्तिकी परवाह न करके उसका पतन साधित कर सकता है।" किन्तु गाधीजीकी इस अहिंसामें, उनकी शान्तिपूर्ण नीतिमें, उनके प्रेम-महामन्त्रमें क्लीवता, कापुरुषता एवं जड़ताके लिये कोई स्थान नहीं है। गांधीजीकी शान्ति-नीति कापुरुषोंके लिये नहीं है। यह हिंसासे भी बढ़कर दुर्बलताके, शान्तिसे भी बढ़कर जड़ताके शत्रु हैं। जैसा कि उन्होंने कहा है:—"The path of peace is not that of weakness or cowardice. We are less enemies of violence than of weakness. A whole world of evil is preferable

to emasculated good. Soft-hearted pacifism is fatal to peace; it is really cowardice and want of faith." गांधीजीने इसी विषयपर और भी स्पष्ट रूपमें असहयोग आन्दोलनके समय अपने "Young India" पत्रमें लिखा थाः—"Between cowardice and violence I will choose violence. I would certainly desire violence in preference to the emasculation of a whole race." अर्थात् भीरुता और अहिंसामें यदि मुझे किसी एकको वरण करना पड़े, तो मैं हिंसाको ही वरण करूँगा। सम्पूर्ण जाति नपुंसक बना दी जाय, इसकी अपेक्षा मैं अवश्य ही हिंसाको अच्छा समझूगा।" जहाँ साम्यवादी शक्ति, सैन्यबल, कठोर शासन एवं भीति-प्रदर्शन द्वारा साधरण जनताका मत परिवर्तन करना चाहते हैं और अपने राजनीतिक विरोधियोंको कुचल डालनेके सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं जानते, वहां गांधीजी कहते हैंः—"We do not seek to coerce any. We seek to convert them. हम किसीपर जोर-जबर्दस्ती करके उसे अपने मतमें लाना नहीं चाहते, हम लोगोंका मत-परिवर्तन करना चाहते हैं।"

लेनिनके समान गांधीजी भी विप्लवी हैं और अपनेको एक विप्लवीके रूपमें मानते भी हैं। उन्होंने कहा है—"I am a non-violent rebel.—मैं एक अहिंसक विद्रोही हूं।" स्वाधीनता प्राप्तिके लिये गांधीजी भी साम्यवादियोंके समान ही (direct action) विरोधियोंपर सीधा वार करनेके सिद्धान्तमें

विश्वास करते हैं। व्यवस्थापिका सभाओंमें प्रवेश करने, सरकारी नौकरीका प्रचण्ड विरोध करने, सरकारके विरुद्ध क्रोध एवं रोष प्रकट करने तथा प्रस्ताव पास करनेसे स्वराज्य नहीं मिल सकता, इस बातमें गांधीजीका अखण्ड विश्वास है। बम्बई कांग्रेसके अधिवेशनमें आपने स्पष्ट रूपमें कहा था कि जहां तक इतिहाससे मेरा परिचय है, मैं ऐसे किसी भी देशका दृष्टान्त नहीं जानता, जिसने वधानिक उपायों (Constitutional means) द्वारा स्वाधीनता प्राप्त की हो। स्वाधीनता प्राप्त करनेका उपाय क्या है, इस सम्बन्धमें उनका मत स्पष्ट है। वे कहते हैं कि— "Civil Disobedience is the one matchless and invincible weapon at the disposal of the oppressed. अर्थात् भद्र अवज्ञा ही एकमात्र ऐसा अनुपम एवं अजेय अस्त्र है जिसका उपयोग निपीड़ित-वर्ग अपनी मुक्तिके लिये कर सकता है।" गोलमेज सभाके अधिवेशनमें गांधीजीने कहा था—"Freedom is a gift not to be given by one nation to another, it has to be won and purchased with one's blood.—स्वाधीनता एक ऐसा दान है, जो एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रको दिया नहीं जा सकता। इसे तो जीतना होगा और निज रक्तदान द्वारा खरीदना होगा।" They must be prepared to lose all, not merely their personal liberty, not merely their possessions,—land, cash etc, but also the liberty and possessions of their families and

they must be ready cheerfully to face bullets bayonets or even slow death by torture. Harijan 22. 10. 1938.—अर्थात् सत्याग्रहियोंको केवल व्यक्तिगत स्वाधीनता, व्यक्तिगत सम्पत्ति, जमीन-जायदाद,नकद पसा आदि खोनेके लिये ही तैयार होना नहीं पड़ेगा बल्कि अपने परिवारकी स्वाधीनता और धन-सम्पत्ति खो देनेके लिये भी तैयार रहना पड़ेगा। सत्याग्रहीको हंसते हुए बन्दूकको गोलियोंकी, संगीनके आघातकी और दुःसह यन्त्रणाके बीच तिल-तिल करके मृत्युको स्वीकार करना पड़ेगा।" इस प्रकार अहिंसाके साथ-साथ हम गांधीजीको सत्याग्रह रूपी तलवार धारण किये हुए भी देखते हैं। गांधीजीके कण्ठमें जहां शान्ति एवं अहिंसाकी वाणी है वहां उनके वज्र-हस्तमें सत्याग्रहकी तलवार भी है। स्वराज्य एवं स्वाधीनता के लिये केवल सत्य और अहिंसा ही नहीं, बल्कि एक और गुणकी भी आवश्यकता है; और वह अनिवाय गुण है कष्ट-सहनकी क्षमता। देशी राज्योंके सत्याग्रहके सम्बन्धमें गांधीजीने लिखा था—"It is not enough that they are truthful and non-violent It is necessary also for them to know their own capacity for suffering. Liberty is a dame exacting a heavy price from her wooers.—केवल अहिंसक और सत्यशील होने से ही काम नहीं चलेगा। वे कहांतक दुःख वरण करनेके लिये तैयार हैं, यह बात भी उन्हें जाननी पड़ेगी। स्वाधीनता एक सुन्दरी

स्त्रीके समान है। जो उसे वरण करना चाहते हैं उनसे वह बहुत कुछ चाहती है।" इस प्रकार शक्तिकी उपयोगितामें तो गांधी और लेनिन, दोनों एकमत हैं। हां, इस शक्ति-प्रदर्शनके स्वरूपमें अन्तर अवश्य है। अन्याय एवं अत्याचारोंका प्रतिरोध करनेमें जहां लेनिन हिंसा एवं निर्मम शत्रुताकी भयंकर रुद्रमूर्ति बनकर अपने विरोधियोंके सामने खड़े होते हैं, वहां गांधी प्रेम एवं वीरोचित साधुता (Heroic gentleness.) की शान्त-मूर्ति बन कर शत्रुपक्षके प्रति हिंसा भावपर शीतल वारि-वर्षण करते हुए उसके हृदयमें अनुताप एवं आत्मग्लानिका संचार करते हैं।

गांधीजी और साम्यवादियोंमें एक और बड़ा भेद है साधन-मार्गको लेकर। अपने लक्ष्यतक पहुंचनेके लिये साम्यवादी चाहे जिस किसी मार्गका अवलम्बन करना उचित समझते हैं। समय और अवस्था-विशेषमें वे नाना प्रकारके उपायोंका प्रयोग करते हैं, फिर भी उनकी साधनापद्धतिकी एक विशेष धारा है, एक विशेष रूप है। वे किसी प्रकारके नैतिक आदर्शवादको स्वीकार नहीं करते। उनके लिये एकमात्र नैतिक आदर्शवाद है मानवताको लोभ, अन्याय,शोषण एवं बन्धनसे मुक्त करना। इसके लिये वे "Everything is fair in war—युद्धमें सब कुछ ठीक है—" इस नीतिके अनुसार कार्य करते हैं। वर्तमान समाज-व्यवस्था जबतक कायम है, तबतक धनिकोंके लोभ-पाशसे गरीबोंका उद्धार नहीं हो सकता; इसलिये चाहे जिस प्रकार हो, इस व्यवस्थाके विरुद्ध क्रोध, ईर्ष्या, शत्रुता एवं प्रतिहिंसाका भाव उत्पन्न करके इसका अन्त कर डालना

चाहिये। वर्तमान समाज-व्यवस्थाके विरुद्ध मनुष्यकी आपत्ति जितनी ही बढ़ेगी, उसके परिवर्तनका समय भी उतना ही सन्निकट हो जायगा। इसलिये साम्यवादी वर्तमान समाज-व्यवस्थाके विरुद्ध क्रोध एवं अशान्तिको कम करनेके बदले बढ़ानेकी चेष्टा करते हैं और मूलतः मनुष्यके मंगलके लिये ही इसे आवश्यक समझ कर इस क्रोध एवं हिंसाको अन्याय नहीं समझते। अपने विरोधियोंपर विजय प्राप्त करने तथा अपने लक्ष्यकी सिद्धिके लिये सब कुछ करना आवश्यक है; इसमें नीति, अध्यात्म या धर्मके लिये कोई स्थान नहीं है। हमारा लक्ष्य पवित्र है, अतएव उसतक पहुंचनेके लिये चाहे जो कुछ किया जाय, सब ठीक है। "The end justifies the means" यही लेनिनके चरित्रकी एक उल्लेखनीय विशेषता देख पड़ती है, जो गांधीजीसे सर्वथा भिन्न है। समाजके एक विशाल उत्पीड़ित अंगका, जो उपेक्षित, लांछित एवं पददलित हो रहा था, उद्धार करना ही लेनिनका महान् उद्देश्य था। किन्तु अपने इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उसे एक निर्मम, कठोर, पाषाण-हृदय नेता एवं स्वेच्छाचारी शासक-जैसा नेतृत्व एवं शासन करना पड़ा था। स्वयं विशुद्धचरित्र, सत्यशील, निश्छल, निस्पृह एवं सर्वस्वत्यागी होनेपर भी उसने अपने विरोधियोंके दमनके लिये जिस नीतिका आश्रय लिया, उसमें दया, करुणा एवं सहृदयताका लेशमात्र भी नहीं था। चाहे जिस उपायसे प्रचलित समाज-व्यवस्थाके विरुद्ध संग्राम छेड़कर और अपने विरोधियोंका कठोरतापूर्वक दमन करके अपने लक्ष्यको प्राप्त

करना चाहिये, इस नीतिको गांधीजी बिलकुल स्वीकार नहीं करते। इतना ही नहीं, बल्कि उनके लिये साध्यकी अपेक्षा साधन का ही महत्व अधिक है, और इस साधन-मार्गकी पवित्रता एवं विशुद्धता ही सब कुछ है। इसमें आधुनिक युद्ध-नीतिके लिये कोई स्थान नहीं है। शत्रुसे छिपकर कोई चाल न चली जाय, किसी प्रकारके छल-छद्मका आश्रय न लिया जाय, संग्रामके सारे कौशल शत्रुके सामने प्रकट कर दिये जायं। गांधी लक्ष्यके सम्बन्धमें चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं समझते। उनके लिये साधन ही सब कुछ है। साधन-पथ जितना ही विशुद्ध होगा, उतना ही हमारा मार्ग प्रशस्त होगा, और हम अपने लक्ष्यके सन्निकट पहुंचते जायंगे। जैसा कि गांधीजीने पंडित जवाहरलाल नेहरूके पत्रमें लिखा था :—"I feel too that our progress towards the goal will be in exact proportion to the purity of our means. I know that if we can take care of them (means) attainment of goal is assured."—अर्थात् "मैं यह भी महसूस करता हूं कि जितने ही हमारे साधन पवित्र होंगे, उसी अनुपातसे अपने लक्ष्यकी ओर हम प्रगतिशील होंगे। मैं यह जानता हूं कि यदि हम अपने साधनोंपर ध्यान रखें, तो हमारे लक्ष्यकी सिद्धि सुनिश्चित है।" इस प्रकार गांधीजी किसी भी अवस्थामें छल-कपटका आश्रय ग्रहण करके अपने साधनको दूषित करना नहीं चाहते। उनके संग्राममें प्रेम एवं शक्तिकी साधना साथ-साथ चलती है। अकपट सत्यशीलता

एवं अहिंसा द्वारा मनुष्यके आत्मबलका विकास होता है, और इस मृत्युञ्जयी शक्तिको प्राप्त करके वह मृत्युके साथ क्रीड़ा करता है, बन्धुके समान मृत्युका आलिंगन करता है। किन्तु इस प्रकार निज जीवन-दान करनेपर भी उसके हृदयमें अपने विरोधियोंके प्रति किसी प्रकारके मनोमालिन्य या दुष्ट भावनाका स्पर्शतक नहीं होता। समस्त विरोध, उत्तजना एवं रक्तपातके बीच भी प्रेमकी अविरल धारा अजस्र रूपमें प्रवाहित होती रहती है और मानव हृदयमें प्रेमकी जो पीर होती है, उसके आकर्षणसे एक हृदय दूसरे हृदयकी ओर स्वतः आकर्षित होता रहता है। पारस पत्थरकी तरह इस प्रमके स्पर्शसे मनुष्यका लोभ त्यागमें परिणत हो जाता है। इस प्रकारके युद्धका रणक्षेत्रमें ही अन्त हो जाता है। वह अपने पीछे विरासतके तौरपर विजेताके हृदयमें दम्भ, अहंकार एवं औद्धत्यकी भावना और विजितोंके हृदयमें घोर शत्रुता, मनोमालिन्य, ईर्ष्या-द्वेष एवं प्रतिहिंसाकी चिरधूमायित वह्निशिखा नहीं छोड़ जाता।

गांधीवादमें साधनाका विशेषत्व इसी बातमें है कि वह व्यक्तिके आत्मबलके तारतम्यके उपर अनेकांशमें निर्भर करता है। यदि किसीमें आत्मबल कम है, तो वह शासनके विरुद्ध अपनी आपत्ति प्रदर्शित करके ही जेल जायगा। जिसमें आत्मबल कुछ अधिक है, वह सरकारी कर देना मन्द करके चरम दण्ड (मृत्यु) वरण करेगा। गांधीजी देशको इस साधन-मार्गसे ही ले जाना चाहते हैं। यही उनके मार्गके साथ साम्यवादका सबसे

बढ़कर पार्थक्य है। गांधीजी भी अपनेको विप्लवी कहते हैं, किन्तु उनका यह विप्लव क्रमविकासमान् विप्लव (Evo'utionary revolution) है। विप्लवके बाद समाजका क्या रूप होगा, मनुष्यकी भयहीन विजयी आत्मा किस समाज-व्यवस्था द्वारा प्रेमको विधिवद्ध करेगी, इस सम्बन्धमें गांधीजी उदासीन हैं। स्वराज्यके स्वरूपके सम्बन्धमें भी एक बार उन्होंने कहा था कि भावी राष्ट्रका स्वरूप क्या होगा, इस सम्बन्धमें तर्क-वितर्क करना मेरा काम नहीं है ; मेरा काम है कि किस विशुद्ध उपायसे देशवासी आत्मवल प्राप्त करेंगे, सब प्रकारके भयको जीतकर निर्भीक बनेंगे, यह ढूंढ़ निकालना और इसी मार्गपर देशको क्रमशः परिचालित करना। आन्तरिक शक्तिकी अनुभूति प्राप्त कर लेनेपर देश अपनी राष्ट्र-व्यवस्था स्वयं ठीक कर लेगा। यूरोपके बड़े-बड़े राष्ट्र-नायकोंके समान गांधीजीकी महत्वाकांक्षा राष्ट्रको विशेष रूप देनेकी नहीं है। वह तो भय, संत्रास एवं युद्धसे भीत एवं श्रान्त मानवको प्रेम द्वारा परिशुद्ध एक नूतन रणकौशल सिखाना चाहते हैं। प्रेमके मार्गसे भी संग्राम सम्भव है, यह शिक्षा ही वर्तमान युगके लिये उनका श्रेष्ठ अवदान है। इस संग्राम द्वारा राष्ट्र एवं समाजमें परिवर्तन हो सकेगा या नहीं, इसका विचार तो भावी पीढ़ी ही कर सकती है।

साम्यवादी मानव-चरित्रकी दुर्बलताओंपर, उसकी स्वार्थ-बुद्धि एवं पाशविक प्रवृत्तिपर लक्ष्य रखते हुए सर्वसाधारण-जनको जिस रूपमें व्यवहार-जगतमें विचरण करते देखते हैं, उसी रूपमें

बसे लेते हैं। इसलिये कुछ शुभ-बुद्धिसम्पन्न मनुष्य छलबल, कौशलसे, चाहे जिस उपायसे, राष्ट्र-शक्तिको एकबार हाथमें कर लेनेपर उस शक्तिको मनुष्यका मन परिवर्तित करनेके काममें नियोजित करेंगे। शिक्षा एवं प्रचार-कार्य द्वारा वे मनुष्यका साम्यनीतिके अनुकूल गठन करेंगे, और यदि मनुष्य इसमें बाधा प्रदान करेगा तो सम्पूर्ण राष्ट्र-शक्तिका उपयोग उसकी स्वार्थ-बुद्धिका दमन करनेमें किया जायगा। शासन द्वारा, भयप्रदर्शन द्वारा, शिक्षा द्वारा, प्रचार-कार्य द्वारा साम्यवाद मनुष्यको कल्याण-मार्गपर परिचालित करना चाहता है। इसमें सफलता नहीं मिलनेपर राष्ट्रशक्तिके प्रयोगमें ही उसकी विशेष आस्था है।

किन्तु गांधीजीका इससे मौलिक मतभेद है। मनुष्यके अन्तर के प्रति उसकी शुभ बुद्धिके प्रति उनके मनमें गम्भीर अनुराग है, अखण्ड विश्वास है। जिस समाज-व्यवस्थामें शासन द्वारा एवं भय-प्रदर्शन द्वारा मनुष्य परिचालित होगा, उनकी दृष्टिमें वह समाज-व्यवस्था स्थायी नहीं हो सकती। मनुष्यको भय-शून्य बनाना ही जहां अन्तिम लक्ष्य है वहां उसके बाह्य रूपको उसके अन्तरके चरित्रसे बढ़कर स्थान क्योंकर दिया जा सकता है? यहीं गांधीवादके साथ साम्यवादका बहुत बड़ा प्रभेद है।

साम्यवाद और गांधीवादकी इस तुलनात्मक विवेचनासे हम इस परिणामपर पहुंचते हैं कि जहांतक आदर्शका सम्बन्ध है, दोनोंमें बहुत कुछ समानता है। मार्क्स और लेनिनके समान गांधीजी भी दीन-दरिद्र, शोषित एवं उत्पीड़ितोंके अकृत्रिम बन्धु

हैं। सार्वजनिक कल्याणकी भावना उनके मनमें भी उतनी ही प्रबल है, सब प्रकारके शोषण एवं उत्पीडनका अवसान वह भी देखना चाहते हैं, पूंजीवादके राहुग्राससे सर्वहारा दलकी मुक्ति-कामना वह भी करते हैं। धनोत्पादनके साधनोंपर समाजका अधिकार हो, यह उन्हें भी अभीष्ट है और स्वाधीनताकी प्राप्तिके लिये शक्तिप्रयोग,त्याग, बलिदान और 'सीधा प्रहार' (direct action) में उनका भी विश्वास है। हां, अवश्य ही उनका यह शक्तिप्रयोग अहिंसात्मक और 'सीधा प्रहार' भद्र अवज्ञा अर्थात् Civil Disobdience के रूपमें है। किन्तु आदर्श, साध्य या चरम लक्ष्यको लेकर जहां दोनोंमें इतनी बड़ी समानता है, वहां साधन और दृष्टिकोणको लेकर दोनोंमें आकाश-पातालका अन्तर है। गांधीजीका विप्लव सशस्त्र विप्लव नहीं है, कठोर शासन और भय-प्रदर्शन द्वारा मनुष्यके मनको परिवर्तित करनेकी क्रियामें उनका विश्वास बिलकुल नहीं है और सम्पूर्ण साम्यवादी समाजकी स्थापना होने तक (dictator ship of the proletariat) सर्वहाराके अधिनायकत्वकी नीति भी उन्हें मान्य नहीं है। उनका मार्ग प्रेमद्वारा दुःख वरण करके शत्रु-हृदय जीतनेका मार्ग है, जो तलवारकी धारके समान स्पष्ट होनेपर भी अत्यन्त संकीर्ण और निष्ठुर है। यहां साधकके लिये कुछ रह नहीं जाता। विश्व-लीलामयके अनन्त लीला-प्रवाहमें अपनी क्षुद्र सत्ताको विलीन करके वह अविकम्पित पदसे अपने साधन-पथपर अग्रसर होता हुआ चलता है। भविष्यमें क्या होगा इसकी उसे चिन्ता नहीं।

साम्यवादी रूसमें नूतन युग

सोवियट रूस—जहां धनी दरिद्र नहीं, उच्च-नीचका श्रेणी-भेद नहीं, अधिकार-प्राप्तिकी मात्रामें मनुष्य-मनुष्यमें कोई कमी-बेशी नहीं, जहां दूसरेके परिश्रमसे धनी नहीं बना जा सकता, दुर्बलका शोषण करके ऐश्वर्यशाली नहीं बना जा सकता, जहां तथाकथित कुलीन-वर्ग नाक-भौं सिकोड़कर निम्न वर्गकी ओर अवज्ञा एवं उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखता, जहां राष्ट्र, समाज, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—सबसे बढ़कर मनुष्यका महत्व समझा जाता है, जहां मनुष्यके लिये ही राष्ट्र और समाज, धर्म और शास्त्रका विधि-विधान है, जहां राष्ट्रका एकमात्र आदर्श है—प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक नारीको सभ्यताके पथपर अग्रसर करना, प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक नारीको मनुष्यत्वकी महिमासे

मण्डित करना, मनुष्यके अन्तरमें जो कुछ सुन्दर, जो कुछ श्रेष्ठ और जो कुछ दिव्य है, और जो प्रतिकूल परिस्थितिमें पड़कर विकसित नहीं होने पाता, उसे प्रकाशमें लाकर विकसित होने देनेका सुयोग प्रदान करना, वह देश आज संसारके इतिहासमें एक नूतन सभ्यताकी सृष्टि कर रहा है, मानव-समाजका शक्ति, आनन्द, ज्ञान, कर्म एवं मंगलके बीच नूतन रूपमें गठन कर रहा है। इस सभ्यताका नूतनत्व उसके कतिपय विशिष्टताओंमें है और इन विशिष्टताओंके कारण ही वह पाश्चात्य सभ्यतासे सर्वथा भिन्न भावधाराको ग्रहण करके अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर हो रही है।

सोवियट रूसकी इस नूतन सभ्यताकी पहली विशेषता है—'The abolition of profit-making.' पाश्चात्य सामाजिक व्यवस्थामें धनोत्पादनका मूल उत्स है व्यक्तिगत लाभका उद्देश्य—अर्थात् वहां व्यक्ति अर्थ-लालसासे प्रेरित होकर अर्थोपार्जन इसलिये करता है कि वह अधिकसे अधिक धनी बने और सुखोंका उपभोग करे। वहां यदि कोई व्यक्ति मनुष्यको पशुवत् खटाकर, उसके साथ यन्त्रवत् व्यवहार करके, उसके परिश्रमका शोषण करके, धनी बननेमें समर्थ होता है तो इसके लिये उसे लाञ्छित होना तो दूर रहा, उल्टे समाजमें उसकी प्रतिष्ठा होती है। कोई यह पूछने नहीं जाता कि वह किस प्रकार अन्याय, अनीतिका आश्रय ग्रहण करके धनी बना, बल्कि सब उसके धनका सम्मान करते हैं और धनी होनेके कारण ही वह सम्मानों का अधिकारी समझा जाता है—सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।

किन्तु सोवियट रूसमें इस प्रकार दूसरोंको खटाकर, उनके परिश्रमसे अनुचित लाभ उठाकर या कम मूल्यमें खरीदे गये माल अधिक मूल्यमें बेचकर धनवान बननेका सुलभ, सरल उपाय उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार धनवान बननेकी चेष्टा करनेवाले लोग वहां अपराधी समझे जाते हैं और पूजीवादी देशोंकी तरह उनका सम्मान होना तो दूर रहा, उन्हें अपराधी समझकर दण्ड दिया जाता है और दण्ड देनेमें इस बातका ख्याल नहीं किया जाता कि उन्होंने जिन मनुष्योंको अपने लाभके लिये खटाया, उन्हें उचित मजदूरी दी या नहीं। उचित-अनुचित मजदूरी देनेका प्रश्न नहीं है; प्रश्न है व्यक्तिगत लाभके लिये दूसरोंके शोषणका। एक इस आदर्शवादके कारण ही सोवियट रूसके लोगोंके जीवनमें एक ऐसा महान् परिवर्तन हो गया है, जिसकी तुलना और कहीं नहीं मिल सकती। सोवियट रूसमें यदि कोई मनुष्य शारीरिक शक्ति-सामर्थ्यके होते हुए भी अकर्मण्य बनकर जीवन धारण करता है तो समाज उसे घृणाकी दृष्टिसे देखता है, भले ही उसकी तिजोरीमें धनराशि भरी पड़ी हो। जमीनका मालिक बनकर, मजदूरोंको खटाकर या मकान भाड़ेपर लगाकर धनी बननेका उपाय वहां अब बिलकुल नहीं रह गया, इसलिये इस प्रकारके धनिक वर्गका अस्तित्व वहां अब लुप्त हो गया है। और सबसे बढ़कर महत्वपूर्ण बात तो यह है कि धनार्जनके साधनोंपर वहां व्यक्ति-विशेषका नियन्त्रण हो ही नहीं सकता, जिससे व्यक्ति-विशेषके लिये, जमींदार या पूजीपतिके

लिये सहज ही धनवान बननेका मार्ग सदाके लिये अवरुद्ध हो गया है।

सोवियट रूसकी नूतन सभ्यताकी दूसरी विशेषता है—The Planning of Production for Community Consumption अर्थात् सोवियट रूसमें एक ओर तो धनोत्पादनमें व्यक्तिगत लाभकी प्रेरणा नहीं रह गयी, और दूसरी ओर धनोत्पादनके जितने मुख्य साधन हैं, उनपर समाजका सामूहिक मालिकाना हक कर दिया गया है, इसलिये वहां सम्पत्तिकी सृष्टि सारे समाजकी सेवाके उद्देश्यसे की जाती है। पूंजीवादी देशोंमें वहांके पूंजीपति व्यक्तिगत लाभपर दृष्टि रखकर धनोत्पादन करते हैं और उनमें परस्पर इस बातकी प्रतियोगिता और स्वार्थ-संघर्ष चलता है कि कौन कितने अधिक ग्राहकोंकी इच्छाको सन्तुष्ट कर सकता है। वहांका धनिक वर्ग समाजके मङ्गल-अमङ्गलकी चिन्ता नहीं करता। समाजमें थोड़े लोग, जो उसके माल खरीदनेवाले होते हैं उनकी क्रयशक्ति बनी रहे, बस इसी ओर उसका लक्ष्य रहता है; बाकी लोगोंके हिताहितकी वह परवाह नहीं करता। सोवियट रूसमें धनोत्पादनके क्षेत्रमें किसी प्रकारका स्वार्थ-संघर्ष नहीं देखा जाता। वहां इस बातकी प्रतियोगिता नहीं चलती कि कमसे कम मजदूरी-खर्चपर किस प्रकार अधिकसे अधिक उत्पादन हो सकता है। वहां मशीनोंका उपयोग मनुष्यको मशीन बनानेके लिये नहीं, बल्कि मशीनको मनुष्यका क्रीत दास बनानेके लिये किया जाता है। रूसमें एक व्यक्तिके

लाभका अर्थ दूसरे व्यक्तिकी क्षति नहीं है; सबके स्वार्थ एक समान हैं। जहां प्रत्येक व्यक्ति इस बातको महसूस करता है कि धनोत्पादनमें यदि सामूहिक रूपमें वृद्धि होगी तो उसके अनुसार उसकी प्राप्तिके हिस्सेमें भी वृद्धि होगी। वहां तो प्रत्येक व्यक्ति इस बातमें अपना आर्थिक स्वार्थ समझेगा कि कार्य करनेमें उसे अक्षम नहीं होना चाहिये, सुस्त या काहिल नहीं बनना चाहिये, लापरवाह या बीमार नहीं होना चाहिये। वहांके प्रत्येक धनोत्पादन करनेवाले व्यक्तिको—चाहे वह हाथसे काम करनेवाला श्रमिक हो या मस्तिष्कसे काम करनेवाला – निरन्तर इस बातकी अनुप्रेरणा मिलती रहती है कि वह अपनी क्षमताओंमें वृद्धि करे और शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार अधिकसे-अधिक कार्य करे, जिससे सार्वजनिक वेतन-कोष (Common wage fund) में वृद्धि हो और उसमें किसी जमींदार या पूंजीपतिका कोई हिस्सा हुए विना वह सम्पूर्ण उन्हीं लोगोंमें उनके द्वारा किये गये विभाजन-प्रबन्धके अनुसार बांट दिया जाय। इसलिये इस देशमें कोई काम करनेसे जी नहीं चुराता, आलस्य नहीं करता, मालिककी आंखोंमें धूल झोंकनेकी चेष्टा नहीं करता, क्योंकि ऐसा करके वह किसी दूसरेकी क्षति नहीं करेगा वरन स्वयं क्षतिग्रस्त होगा। समाजकी सामूहिक सम्पत्तिका परिमाण यदि कम हो जायगा तो इसके अनुसार उसके प्राप्त अंशमें भी तो कमी हो जायगी।

सोवियट रूसकी नयी सभ्यताकी तीसरी विशेषता है Social

Equality and Universalism अर्थात् कम्यूनिस्ट रूसके सम्पूर्ण संगठनका आधार है—सामाजिक समानता। वहां मनुष्यके साथ मनुष्यका सम्पर्क साम्यनीतिक आश्रय करके चलता है। वहां समाजके प्रत्येक व्यक्तिको अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार इस प्रकारका काम करना पड़ता है जो समाजके लिये मङ्गलजनक हो। कोई भी व्यक्ति समाजके प्रति इस कर्तव्य-भारसे मुक्त नहीं हो सकता, चाहे उसके पास कितनी ही सम्पत्ति हो या भूमि हो या वह कोई उच्च पदस्थ कर्मचारी हो या विशेष बुद्धि, प्रतिभा या योग्यताका व्यक्ति हो; काम करना ही होगा, चाहे वह काम हाथसे हो या मस्तिष्कसे। सामाजिक सेवाके कार्यमें भाग लेनेके लिये अवकाशके समान कार्यमें भी सबको अपना-अपना अंश ग्रहण करना पड़ेगा। सोवियट रूसमें केवल एक ही सामाजिक श्रेणी है, और वह है हाथसे या मस्तिष्कसे धनका उत्पादन करने· वालोंकी श्रेणी। पति और पत्नी, पिता और पुत्र, शिक्षक और छात्र, या आफिसका मैनेजर या मजदूर, सेनानायक और साधारण सैनिक, सब सामाजिक समानताके वातावरणमें रहते हुए पारस्परिक सम्बन्धमें किसी प्रकारकी हीनताका वोध नहीं करते। रङ्ग या जातिका कोई भेद-भाव नहीं रखा जाता। सोवियट रूसकी सैकड़ों जातियां - जो भाषा और वर्णमें एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं, जिनमें उजड्ड खानावदोश जातियों और आदिमयुगके बर्बरोंसे लेकर आधुनिक युगके सभ्य नगरवासी और राजनीतिज्ञ तक सम्मिलित हैं—केवल एक समान राजनीतिक और कानूनी

अधिकारोंका ही उपभोग नहीं करतीं, बल्कि आर्थिक एवं सामाजिक सम्बन्धोंमें भी उन्हें सब प्रकारसे एक समान स्वतन्त्रता प्राप्त है।

इस सामाजिक एवं समानताकी एक उल्लेखनीय विशेषता है सार्वजनिकता। और देशोंमें हम क्या देखते हैं? वहांकी समाज-व्यवस्थामें इस बातको विधिका विधान—जैसा मान लिया गया है कि सभ्यताकी जितनी सुविधाएं और जीवनके जितने भोग हैं वे देशकी सम्पूर्ण जनताके लिये उपलब्ध नहीं हो सकते। शिक्षा और स्वास्थ्य, बुद्धि और प्रतिभा, सुख-भोग और आमोद-प्रमोद, इन सबका उपभोग देशके एक श्रेणी-विशेष तक ही सीमाबद्ध रहा है। प्रचलित आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्थाके अनुसार देशके लक्ष-लक्ष मन्दभाग्योंको वह शिक्षा और वह स्वास्थ्य, वह दीर्घायु और वह बुद्धि-विकास अथवा उतना भोजन, कपड़ा और उस प्रकारका वास-स्थान प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता, जो उच्च श्रेणीके लिये आवश्यक समझे जाते हैं। किन्तु साम्यवादी रूसकी सामाजिक व्यवस्थामें यह बात नहीं है। वहां सुख-सौभाग्यका उपभोग किसी श्रेणी-विशेष तक ही सीमाबद्ध नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे, वह पुरुष हो या स्त्री, किसी जाति या वर्णका हो, दरिद्र हो या दुर्बल, धन या पद-मर्यादामें चाहे जितना ही अन्तर हो, किन्तु उसके रहन-सहनका मापदण्ड एक समान है और सबके लिये आत्मोन्नति एवं ज्ञान-विज्ञानकी सुविधाएं समान रूपमें प्राप्य हैं। अन्यान्य

देशोंमें राष्ट्रके अन्दर जहां शिक्षित एवं सुसंस्कृत वर्गोंकी सृष्टि करनेकी चेष्टा की गयी है वहां रूसमें लिंग (sex) और वर्णका भेद-भाव किये बिना राष्ट्रके अन्दर केवल बुद्धिजीवी वर्गकी सृष्टि करनेकी चेष्टा नहीं हो रही है, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्रको ज्ञानके प्रकाशमें लाकर सभ्य एवं सुसंस्कृत बनानेकी अक्लान्त साधना चल रही है।

साम्यवादी रूसकी नवीन सभ्यताकी चौथी विशेषता है-The Vocation of Leadership. गणतन्त्र-शासनका रूप चाहे जैसा हो, किन्तु उसकी सफलताके लिये यह आवश्यक है कि उसके सञ्चालकोंमें नेतृत्वकी उपयुक्त क्षमता हो। जनसाधारणको उचित मार्गपर परिचालित करनेके लिये चरित्रवान, निर्भीक, कर्मकुशल एवं सुलझे हुए दिमागवाले दृढ़संकल्प नेताओंका प्रयोजन होता है। सोवियट रूसमें यह भार एक सुसंगठित तथा अनुशासनके कठोर नियमों द्वारा अनुशासित दलके ऊपर समर्पित है। इस दलका नाम है—"कम्यूनिस्ट दल" और यही दल वहांकी जनताको सार्वजनिक विषयोंमें पथ-प्रदर्शन करता है। और देशोंमें किसी राजनीतिक दलसे जो धारणा उत्पन्न होती है, उससे यह कम्यूनिस्ट दल सर्वथा भिन्न है। इस दलकी नीतिसे सहमत होने या इसके पक्षमें वोट देने या इसके कोषमें चन्दा देनेसे ही कोई इसका सदस्य नहीं हो सकता। इसके सदस्योंको भर्ती होनेके पूर्व बहुत दिनों तक नवसिखियेके रूपमें काम करना पड़ता है। इसके सिवा उनमें कुछ विशेष गुण होने

चाहिये—जसे चरित्रकी दृढ़ता, योग्यता, उत्साह और वर्तमान शासन-प्रणालीके प्रति हार्दिक आनुगत्य। अन्यान्य देशोंके राजनीतिक दलोंसे इसकी एक खास विभिन्नता इस बातमें है कि इसके सदस्योंपर बराबर दृष्टि रखी जाती है,उनके कार्य-कलापोंका निरीक्षण होता रहता है और इसके सदस्योंमें यदि अणुमात्र भी त्रुटि-च्युति पायी जाती है, तो वे दलसे पृथक् कर दिये जाते हैं। और देशोंमें राजनीतिक नेतृत्व एवं पथ प्रदर्शनका भार सम्राट्, अभिजात-श्रेणी, धर्माचार्य, सैनिक वर्ग अथवा डिक्टेटरोंके ऊपर होता है। जहां मन्त्रिमण्डल या पार्लामेण्ट द्वारा यह कार्य परिचालित होता है, वहां पार्लामेण्टके सदस्योंमें अधिकांश जमींदार, पूजीपति, महाजन, व्यवसायी, कानून पेशावाले या अन्य श्रेणीके धनवान होते हैं। ये जनसाधारणके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करनेका ढोंग रचते हैं, किन्तु इनमें आन्तरिकताका अभाव होता है। देशकी जनसंख्याका दो-तिहाई भाग किसान और मजदूरोंका इस प्रकारकी पार्लामेण्टोंपर कोई प्रभाव नहीं होता। रूसका कम्यूनिस्ट दल ऐसा नहीं है। जनसाधारणके स्वार्थसे इसका स्वार्थ भिन्न नहीं है और इसके सदस्य दरिद्रता एवं आज्ञाकारिताके विशेष दायित्वको स्वेच्छापूर्वक वरण करके जातिका नेतृत्व करते हैं। जातिकी सब प्रकारसे सेवा ही इस दलकी तपस्या एवं साधना है।

साम्यवादी रूसकी नूतन सभ्यताकी पांचवीं विशेषता है The culture of science. सोवियट रूसमें जो नेता सार्व-

जनिक कार्यांमें भाग लेते हैं, उनमें प्रत्येकका मुख्य उद्देश्य होता है, देशकी सम्पत्तिमें वृद्धि करना; और जिस साधन द्वारा यह वृद्धि होगी, वह साधन है विज्ञान। बोल्शेविकोंका विश्वास है कि विश्वब्रह्माण्डके सम्बन्धमें मनुष्यका ज्ञान ज्यों-ज्यों बढ़ता जायगा, प्रकृतिके ऊपर उसकी शक्तियोंका विस्तार त्यों-त्यों होता जायगा। इसलिये कम्यूनिस्ट दल और सोवियट सरकार विज्ञानके साधन-पर सम्पूर्ण हृदयसे विश्वास करती है और विज्ञानके सम्बन्धमें उसका यह विश्वास धम-विश्वासकी तरह ही प्रबल है। धर्मका स्थान वहां विज्ञानने ग्रहण किया है; यह विज्ञान ही वहांका नूतन धर्मविश्वास है जिसकी उपासनामें वे मन-प्राणसे संलग्न हैं। मनुष्यक परिश्रममें अधिकसे अधिक बचत हो और अधिकाधिक धनोत्पादन हो, इसके लिये सोवियट सरकार यन्त्रोंका 'अधिकसे अधिक उपयोग करती है और नूतन यन्त्रोंका आविष्कार करती है। विज्ञान-लक्ष्मीकी यह आराधना प्रकृतिकी जड़शक्ति पर विजय प्राप्त करनेके लिये ही होती है। प्रकृतिकी शक्तियोंको जीतकर ही प्रचुर सम्पत्तिकी सृष्टि की जा सकती है। और प्रचुर सम्पत्तिकी सृष्टि हुए विना मनुष्यकी दरिद्रता या अभाव नहीं मिट सकता। दन्यके अभिशापसे अभिशप्त बुभुक्षु, नग्न एवं निराश्रय मनुष्यको पहले दरिद्रतासे मुक्त करना होगा। दरिद्रतासे मुक्त होनेपर ही उसके लिये शिक्षा एवं स्वास्थ्य, कला एवं संस्कृतिका कोई मूल्य हो सकता है। इसलिये सोवियट सरकार सबसे पहले देशमें विज्ञानकी बदौलत प्रचुर सम्पत्तिकी सृष्टि कर रही

है, जिससे जीवनकी अनिवार्य आवश्यकताओंसे कोई मनुष्य वञ्चित न रह जाय। इसके बाद मनुष्यके चित्तको शिक्षा एवं संस्कृतिकी सहायतासे शिक्षित एवं परिमार्जित किया जा सकता है। मनुष्य अन्न-वस्त्रकी चिन्तासे जब तक मुक्त नहीं होगा, तब तक अन्यान्य विषयोंकी ओर वह मन नहीं लगा सकता। इसी विश्वाससे अनुप्राणित होकर सोवियट रूस जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें विज्ञानको प्रधानता दे रहा है। स्कूल और कालेजोंकी शिक्षामें विज्ञानकी प्रधानता दिन-दिन बढ़ती जा रही है। कृषि और व्यवसायमें विज्ञानका उपयोग निरन्तर हो रहा है और नित-नूतन आविष्कार हो रहे हैं। मानव जातिकी मुक्तिके साधनके रूपमें विज्ञान-लक्ष्मीकी आज सोवियट रूसमें जिस रूपमें आराधना हो रही है, उस रूपमें और किसी देशमें नहीं। विज्ञान आज वहांके जातीय जीवनका मेरुदण्ड हो रहा है।

साम्यवादी रूसकी छठीं विशेषता है Anti-Godism अर्थात् ईश्वर-विरोधिता। सोवियट रूसकी इस विशेषताके कारण पाश्चात्य जगतमें उसकी जितनी निन्दा-कुत्सा हुई है उतनी और किसी बातको लेकर नहीं। धर्म एवं ईश्वरके विरुद्ध साम्यवादी रूसका जो यह अभियान है, इसका कारण क्या है? ज़ारशाही रूसकी अमलदारीमें धर्मके नामपर वहां जो कुछ हो रहा था, उसे देखते हुए धर्मके प्रति रूसके इस विद्वेष भावपर आश्चर्य नहीं होता। धर्मके ऊपर भी ज़ारकी ही सर्वप्रधान स्वेच्छाचारी सत्ता थी। अपने शासनके अन्तिम दिनोंमें ज़ारने अपने आध्यात्मिक उप-

देष्टाके रूपमें रासपुटिन नामक जिस कपट मुनिको ग्रहण किया था उसकी धूर्तता, भण्डता, लम्पटता एवं कामुकता चरम सीमा-पर पहुंच चुकी थी। गांवोंमें जो धर्मपुरोहित थे वे सर्वथा निरक्षर एवं मूर्ख थे और उनका काम था भोलेभाले अन्धविश्वासी ग्रामीणोंसे पैसे ऐंठना। मठों और मन्दिरोंमें अपार सम्पत्ति लगी हुई थी और इन स्थानोंमें धर्म या अध्यात्मकी चर्चा होनेके बदले यन्त्र या तावीजकी करामातें दिखायी जाती थीं। धर्म-विश्वाससे भी बढ़कर साधारण अशिक्षित जनताके मनके ऊपर जादू-टोनाका विश्वास जमा हुआ था। रूसमें धर्मकी इस दुर्गति एवं धर्मके नामपर सब प्रकारके अनाचार एवं पापाचार होते देखकर लन्दन विश्वविद्यालयके दर्शनशास्त्रके अध्यापक जान मेकमुरेने १९३४ में एक अंगरेजी पत्रिकामें एक लेख लिखा था, जिसमें आप इस परिणामपर पहुंचे कि रूसमें धर्मका जो रूप रहा है उस रूपमें उसका सदाके लिये पृथ्वीपरसे और मनुष्य जातिकी स्मृतिसे विलोप हो जाना चाहिये (Nearly all that religion has been, and has meant in Russia, ought to perish for ever from the face of the earth and from the memory of men). भाग्य, अदृष्ट और परलोकके नामपर ही तो धर्मपुरोहित लक्ष-लक्ष मनुष्योंको इस जीवनमें सब प्रकारके अन्याय, अपमान, दुःख दारिद्र्य, अत्याचार-निर्यातन नीरव भावसे सहन करनेकी शिक्षा देते हैं। धर्मके नामपर ही दुर्बलका उत्पीड़न जायज समझा जाता है। धर्मके

नामपर ही तो अलस एवं अकर्मण्य बनकर दूसरोंके परिश्रम और कमाईपर जीवन धारण करना गर्हित एवं लज्जास्पद नहीं समझा जाता। इटलीसे दलके दल युवक जब अबीसीनियाके निरीह अधिवासियोंकी हत्या करने, उनकी स्वाधीनताका अपहरण करने, वहांके ग्रामवासियोंपर बम-वर्षा करने, अबोध शिशु एवं नारियोंके निर्दोष रक्तसे अपने हाथोंको रंगनेके लिये विदा हुए थे तो वहांके धर्मपुरोहित पादरियोंने भगवानके नामपर उन्हें आशीर्वाद प्रदान किये थे। अफ्रिका और एशियामें यूरोपके साम्राज्यवादी राष्ट्रोंकी साम्राज्यविस्तार-लालसाको चरितार्थ करनेमें इन पादरियोंका कहां तक हाथ रहा है? पहले भी ये ईसाई पादरी ही हाथमें बाइबिल लेकर महात्मा ईसाके धर्मोपदेश एवं शान्तिवाणी सुनाकर अश्वेताङ्ग जातियोंका उद्धार करने चले थे, और इनके पीछे चले थे धनलोलुप श्वेताङ्ग व्यवसायी। धर्मान्ध पुरोहितोंने ज्ञान-विज्ञानके प्रचारमें सबसे अधिक बाधा पहुंचायी है। सूर्य पृथ्वीके चतुर्दिक घूमता है, इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेके फलस्वरूप गेलिलियोको धर्मपुरोहितों द्वारा कितनी लांछनाएं सहन करनी पड़ी थीं! डार्विनके विकासवादके सिद्धान्तपर अंगरेज पादरियोंने कितना हो-हल्ला मचाया था! इस प्रकार धर्मान्धता फैलाकर धर्म-पुरोहितोंने मानवजातिका कम अनिष्ट नहीं किया है; और यह धर्मान्धता मनुष्यकी सर्वाङ्गीण उन्नतिके मार्गमें एक भारी बाधक सिद्ध हुई है। सोवियट रूसमें जिस नूतन सभ्यताका निर्माण हो रहा है उसके मार्गमें भी यह धर्मा-

न्धता कम बाधक सिद्ध नहीं हुई है। सोवियट रूसके साम्यवादी नेताओंका कहना है कि वे केवल नगरोंके श्रमजीवियोंको ही नहीं, बल्कि सोवियटसङ्घराष्ट्रके बहुतसे पिछड़े हुए प्रदेशोंके वर्बर और जङ्गली मनुष्योंको भी सभ्यताके उच्च स्तरपर लानेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं। इन सब अशिक्षित एवं अन्धविश्वासी मनुष्योंके मनपर अपने पूर्व-पुरुषोंसे उत्तराधिकारके रूपमें प्राप्त चिरकालजनित मज्जागत संस्कारका इतना प्रभाव जमा हुआ है कि अब भी उसका समूल उच्छेद करनेके लिये बहुत कुछ करना बाकी है। धनोत्पादनमें वैज्ञानिक प्रणालियोंका अवलम्बन, रोग-निवारणके लिये स्वास्थ्य और सफाईके नियमोंका विस्तार-जैसे कार्योंको विफल करनेके लिये इस धर्मान्धता एवं कुसंस्कारने क्या नहीं किया है? यही कारण है कि रूसके स्कूल और कालेजोंमें तथा समाचारपत्रोंमें किसी भी अप्राकृत तथा अलौकिक विषयका समर्थन सर्वथा निषिद्ध कर दिया गया है। अज्ञानान्धकारके आवर्त्तमें निमज्जित मनुष्यका मन जिन सब अन्धविश्वासों एवं कुसंस्कारोंसे आच्छन्न रहता है उनसे मनको मुक्त करके मनुष्यको सर्वथा रूपान्तरित करनेके उद्देश्यसे ही सोवियट रूसमें यह ईश्वर-विरोधी आन्दोलन चलाया गया है। इस ईश्वर-विरोधी आन्दोलन अर्थात् नास्तिक-वादका कोई समर्थन करे या नहीं, किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि धर्मकी आड़में धार्मिक जगतमें जो शठता, भंडता, स्वार्थपरता, संकीर्णता एवं जड़ता फैली हुई है, उसपर इस आन्दोलन द्वारा अवश्य ही कुठाराघात हुआ है। किन्तु साम्यवादी रूस

के इस ईश्वर-विरोधी आन्दोलनसे यह अनुमान नहीं कर लेना चाहिये कि वहां आस्तिकोंको—चाहे वे ईसाई हों या यहूदी, मुसलमान हों या बौद्ध—उत्पीड़ित या निर्यातित किया जाता है, जैसा कि मध्य युगमें धर्मके नामपर किया जाता था। आप किसी धर्म-सिद्धान्त या मतवादमें विश्वास या निजी जीवनमें धार्मिक अनुष्ठानोंका पालन करें, इसके विरुद्ध वहां कोई कानून नहीं है। कोई आस्तिक स्त्री या पुरुष अपनी आस्तिकताके कारण किसी पद-मर्यादासे वंचित नहीं किया जा सकता। अब तो सार्वजनिक स्कूल और कालेजोंमें आस्तिक पिताके बच्चोंको लिये जानेमें भी कोई निषेध नहीं है। रूसमें अब भी ईसाइयोंके गिर्जे, मुसलमानों की मसजिदें और यहूदियोंके धर्म-मन्दिर है, जो सार्वजनिक उपासनाके लिये खुले रहते हैं। ये सब धर्मस्थान राष्ट्रीय सम्पत्ति समझे जाते हैं और इन्हे सरकारको साधारण रूपमे टैक्स देना पड़ता है। इन धर्म-स्थानोंमें पुरोहित और मुल्ले भी रहते हैं जो जन्म, विवाह और अन्त्येष्टि क्रियाके अवसरपर जिस व्यक्तिकी इच्छा होती है उसके घर जाकर या धर्म-स्थानमें आशीर्वाद दे सकते हैं। माता पिता अपने घरमें बच्चोंको धार्मिक शिक्षा दे सकते हैं। किंतु धार्मिक संस्थाएं और धर्म-पुरोहित धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान करनेमें किसी प्रकारकी शिक्षा सम्बन्धी या लोकोपकारी अथवा क्रीड़ा-कौतुक सम्बन्धी कार्य नहीं कर सकते। १६२६ के एक कानूनके अनुसार किसी प्रकारका सावजनिक धर्म-प्रचार कार्य एक दण्डनीय अपराधके रूपमें वर्जित कर दिया गया है;

जब कि धर्मविरोधी प्रचार कार्य करनेकी अनुमति प्रदान की जाती है और इसमें प्रोत्साहन भी प्रदान किया जाता है। किसी भी सरकारी प्रकाशन-संस्थाकी ओरसे कोई धार्मिक पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकती, और न बाहरसे इस प्रकारकी कोई पुस्तक मंगायी जा सकती है। सारांश यह कि रूसमें कोई व्यक्ति अपने धार्मिक विश्वासके कारण उत्पीड़ित नहीं किया जाता, किन्तु किसी संस्थाकी ओरसे या सार्वजनिक रूपमें धार्मिक अनुष्ठान करनेका कठोर निषेध है।

साम्यवादी रूसकी सातवीं विशेपता है Emergence of a Communist Conscience. सत्यके सन्धान और असत्यके प्रत्याख्यानमें विज्ञानकी महत्ता चाहे कितनी ही क्यों न हो, किन्तु केवल विज्ञान ही मानव-जातिकी मुक्तिके लिये पर्याप्त नहीं है। विज्ञानसे प्राप्त ज्ञान द्वारा मानव-जातिकी सेवा करनेके लिये यह आवश्यक है कि सद् और असद्, न्याय और अन्यायके सम्बन्धमें मनुष्यके मनमें जो धारणा अवतक रही है उसमें परिवर्तन हो। रूसके नर-नारियोंमें न्याय और अन्यायके सम्बन्धमें आज एक नूतन बोधका उदय हो रहा है। समाजके प्रति उनके हृदयमें जो एक नूतन ज्योति-ज्ञान जाग्रत किया गया है वह पूंजीवादी समाजके नीति-ज्ञानके सर्वथा विपरीत है। यह नीति-ज्ञान है Universal individual indebtedness अर्थात् प्रत्येक मनुष्य समाजके प्रति ऋणी रहता है। जिस समाजमें जन्म लेकर हम लालित-पालित होते हैं उस समाजके प्रति शैशव-

कालसे लेकर उस अवस्थातक जबतक कि हम स्वावलम्बी नहीं बनते, हम प्रतिक्षण समाजके प्रति ऋणी होते रहते हैं। अन्न, वस्त्र, आश्रय-स्थान, सब कुछके लिये हमें समाज के व्यक्तियोंके ऊपर निर्भर करना पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य अपने हाथ या मस्तिष्क द्वारा सेवा कार्य करके इस ऋणका परिशोध करनेके लिये न्यायतः बाध्य है। समाजसे ही तो उसके शरीर, मन और बुद्धिको खुराक मिली है, उसके शरीर-तत्त्व एवं ज्ञान-तत्त्वोंका पोषण हुआ है। इसलिये देह एवं मस्तिष्ककी शक्तियोंको समाजकी सेवामें नियोजित करना होगा। यह नहीं हो सकता कि समाजसे सब कुछ ग्रहण करके आप देह, मन और बुद्धिकी शक्तियां प्राप्त करें और जब इन शक्तियोंके उपयोगका समय उपस्थित हो उस समय आप समाजके प्रति अपने ऋणको भूल जायं। रूसमें जो व्यक्ति वर्तमान या भावी पीढ़ियोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये अपनी क्षमताके अनुसार समाजके प्रति अपने ऋणके दायित्वकी उपेक्षा करता है अथवा उसका परिशोध नहीं करता वह चोर समझा जाता है और चोरके समान ही उसके साथ व्यवहार होता है। साम्यवादी रूसकी इस भावनाके साथ भगवद्गीताके इस श्लोककी तुलना कीजियेः—इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तैर्दत्तान प्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एवसः॥ अर्थात् देवता द्वारा दिये गये भोग्य पदार्थोंका जो स्वयं उपभोग करता है वह सचमुच चोर है। इसलिये साम्यवादी रूसमें कोई समर्थ मनुष्य अलस एवं निश्चेष्ट बनकर जीवन व्यतीत नहीं कर

सकता। इस प्रकारके व्यक्तिको समाज घृणाकी दृष्टिसे देखता है। यदि कोई व्यक्ति अपने कार्यमें अलसता एवं शिथिलता दिखलाता है, उसकी लापरवाहीसे यदि कोई यन्त्र नष्ट हो जाता है या किसी वस्तुकी क्षति होती है, तो उसके सम्पर्कमें आकर और लोगोंमें भी इस प्रकारके दूषण न फैल जायं, इसलिये उसे समाजसे विच्छिन्न कर दिया जाता है। किन्तु इस प्रकारकी त्रुटियों एवं दोषोंके प्रतिविधानके लिये दण्ड देनेकी अपेक्षा लोग अच्छे अभ्यास ग्रहण करें और इस प्रकारके अपराध हों ही नहीं, इस बातपर विशेष ध्यान रखा जाता है और इसके लिये सब प्रकारसे प्रोत्साहन प्रदान किया जाता है। रूसकी सोवियट सरकार अपने देशवासियोंके सामने जिस आदर्शको आज ज्वलन्त रूपमें रखने की चेष्टा कर रही है वह आदर्श है बुभुक्षु एवं अन्न महामानवका मंगल और मुक्ति। इसके लिये मनुष्यके मनमें एक नूतन चेतना को जाग्रत करना होगा और वह चेतना यह है कि समाजके प्रति प्रत्येक व्यक्ति अनेक प्रकारसे ऋणी है और इस ऋणका समाज-सेवा द्वारा प्रतिशोध करना उसका न्यायतः कर्तव्य है।

किन्तु समाजके प्रति कर्तव्यपालनकी इस बाध्यतासे यह नहीं समझना चाहिये कि सोवियट रूसमें मनुष्यसे केवल काम ही लिया जाता है। रूसके नूतन जीवनकी एक विशेषता यह है कि प्रत्येक मनुष्यको इस प्रकारका कार्य दिया जायगा जिस कार्यके करनेमें वह सक्षम होगा और जिसमें उसे आनन्द प्राप्त होगा। बोलशेविकोंका कथन है कि वे श्रमको इस प्रकारके उच्च स्तरपर ले

जाना चाहते हैं जहां श्रम किसी निम्न श्रेणी या जातिके लिये भार-स्वरूप न होकर समाजके प्रत्येक व्यक्तिके लिये गौरव एवं आनन्दका विषय हो। इस उद्देश्यसे ही लेनिन इस बातपर जोर दिया करता था कि ऐसे समाजकी सृष्टि करनी होगी, जिसमें सम्पत्तिकी प्रचुरताके बीच सबको एक समान अधिकार होगा।

साम्यवादी रूसमें जिस नूतन मानव सभ्यताकी सृष्टि हो रही है उसकी ये ही सब विशेषताएं हैं, जिनका उल्लेख सिडनी और बिट्रिस वेबने अपनी विख्यात पुस्तक Soviet Communism: A new Civilisation? में किया है। इन सब विशेषताओंमें परस्पर-विरोध न होकर एक संयोगसूत्र है। मनुष्यकी सेवा ही सोवियट रूसकी समस्त कर्मसाधनाका मूल मंत्र है। समाजके प्रत्येक व्यक्तिका मंगल तभी संभव हो सकता है, जब कि उस समाजमें सम्पत्तिके समस्त साधनों और सुख-सुविधाओंपर सब मनुष्योंका एक समान अधिकार हो। इस प्रकारके समाजमें शोषण और व्यक्तिगत लाभके लिये कोई स्थान नहीं हो सकता। यहां लाभका स्थान सेवाने ग्रहण किया है। समाजमें अधिकसे अधिक धनोत्पादन हो और इस धनके ऊपर सबका अधिकार एक समान हो, इस बातपर दृष्टि रखकर ही वहां धनोत्पादनके लिये आर्थिक योजना तैयार की जाती है। किन्तु आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाएं, कर्त्तव्याकर्तव्यके सम्बन्धमें विधान—ये सब एक ओर जहां प्रचुर धनोत्पादनपर जोर देते हैं वहां दूसरी ओर वे इस बातपर भी कम जोर नह क प्रत्येक नर

अज्ञानान्धकारको ज्ञानालोकसे दूर करके उसे प्रकृतिके रहस्योंसे —मानव प्रकृतिके रहस्योंसे परिचित करा दिया जाय। मनुष्य अपनी अन्तर्हित शक्तियोंपर, अपनी शक्ति एवं क्षमतापर, अपने गौरवोज्वल भविष्यपर विश्वास करना सीखे; वह किसी अप्राकृत या अलौकिक शक्तिमें विश्वास न करके विज्ञान-लक्ष्मीका उपासक बने। यह विज्ञान ही उसे बन्धनोंसे मुक्त करेगा, उसके अज्ञान एवं अन्ध-विश्वासको दूर करेगा और प्रचुर सम्पत्ति उपार्जन करनेकी शक्ति उसे प्रदान करेगा। साम्यवादी रूसमें आज ईश्वरकी उपासनाका स्थान मनुष्यकी सेवाने ग्रहण किया है और इस मानव-सेवाके आदर्शसे अनुप्राणित होकर वह नूतन समाज-व्यवस्थाकी सृष्टि करनेमें लगा हुआ है।

सोवियट रूसकी इन विभिन्न विशेषताओंके बीच जो संयोगात्मक एकता है उसके साथ अब जरा पाश्चात्य सभ्यताकी परस्पर-विरोधी असङ्गतियोंका मिलान कीजिये। कृषि एवं शिल्प-व्यवसायमें आधुनिक विज्ञानके प्रयोगसे धनतांत्रिक देशोंमें सम्पत्ति की प्रचुरता होनेपर भी कोटि-कोटि मनुष्य अभावग्रस्त बने रहते हैं। पूंजीवादी देशकी धनोत्पादक संस्थाएं, कल-कारखानोंको बन्द कर रही हैं, खानोंको बन्द कर रही हैं, खाद्य-पदार्थोंको कम कर रही हैं, जब कि लाखों मनुष्योंको पर्याप्त अन्न-वस्त्र और रहनेके लिये उपयुक्त घर नहीं मिलता। नये-नये यन्त्र और ज्ञान-विज्ञानके नित नूतन आविष्कार होते रहनेपर भी मनुष्य अभीतक दारिद्र्यके पंजेसे मुक्त नहीं हो सका है। यूरोप और अमेरिकाके

समान सोवियट रूसमें भी यन्त्रोंका व्यवहार किया जाता है; किन्तु पाश्चात्य पूंजीवादी देशोंमें यन्त्रोंका व्यवहार मनुष्यके मंगलपर दृष्टि रखकर नहीं किया जाता, जिससे यन्त्र आज वहाँ मनुष्यके लिये आशीर्वाद न होकर अभिशाप सिद्ध हो रहा है। साम्यवादी रूस यन्त्रका व्यवहार मनुष्यके कल्याणपर दृष्टि रखकर करता है। व्यक्तिगत लाभपर दृष्टि रखकर धनोत्पादनकी लालसा से जिन देशोंमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान एवं यन्त्रोंका उपयोग किया जाता है, वहां सभ्यताके साथ-साथ ब्रिटिश सरकारके प्रधान मेडिकल अफसरके शब्दोंमें "unemployment, under-nourishment and preventable malady and accident seem to be the unavoidable concomitants of current civilisation in Western Europe of the present day" अर्थात् वेकारी, अपुष्टिकर खाद्य, निवार्य रोग और दुर्घटना उसके अनिवार्य अङ्गके रूपमें हो गयी हैं। ज्ञान-विज्ञान एवं यन्त्रके दुरोपयोगसे उत्पन्न इन्हीं अनिवार्य बुराइयोंसे बचनेके लिये सोवियट रूस नूतन समाज-व्यवस्थाके आधार पर मनुष्यके कल्याणके लिये यन्त्रका व्यवहार कर रहा है।

रूसके राज्य-विप्लवकी एक विशेषता यह है कि इस एक राज्य-विप्लवमें ही तीन क्रांतियोंके कार्य सम्पन्न हुए हैं। अन्यान्य देशोंमें धार्मिक, औद्योगिक एवं राजनीतिक क्रांतियां वारीःवारीसे हुई हैं। धार्मिक क्रांतिमें व्यवहार-जगतपर धर्मकी सत्ताका उच्छेद होकर अभिजात सामन्तवर्गकी सत्ता स्थापित

हुई। इसके बाद औद्योगिक क्रांतिमें सामन्तवादका नाश हुआ और सम्पत्तिपर व्यक्तिगत प्रभुत्व द्वारा पूंजीवादी प्रथाका प्रवर्तन हुआ। सबसे अन्तमें राजनीतिक विप्लव, जिसके द्वारा देशके शासनमें जनसत्ताके सिद्धान्तको ग्रहण किया गया और पार्लामेण्टरी गणतांत्रिक शासन-पद्धति उन्नतिशील देशोंमें प्रवर्तित हुई। किन्तु रूसमें धर्म, व्यवसाय और राजनीति, इन तीनों क्षेत्रोंमें एक साथ ही अभूतपूर्व क्रांति हुई है। धार्मिक क्रांतिने मनुष्यको यह सन्देश सुनाया कि शास्त्रोंके अर्थहीन आचार, स्वर्ग का लोभ और नरकका भय, अन्धविश्वास एवं कुसंस्कार द्वारा मनुष्यकी मुक्ति नहीं हो सकती। मनुष्यकी मुक्ति होगी, ज्ञान-विज्ञानकी उपासना द्वारा, सब प्रकारके अन्धविश्वासों और अलौकिकताओंसे मनकी मुक्ति द्वारा। औद्योगिक क्रांति द्वारा यह सन्देश सुनाया गया कि धनोत्पादनका अर्थ यह नहीं है कि समाज जो सम्पत्ति उत्पन्न करेगा, उससे एक श्रेणी-विशेषका धनागार भरता जायगा और बाकी लोग कमसे कम मजदूरीपर अपनी श्रम-शक्तिको बेचनेके लिये बाध्य होते रहेंगे। प्रत्येक व्यक्तिके कल्याणपर दृष्टि रखकर धनका वितरण करना होगा और सम्पत्ति उत्पन्न करनेके साधनोंपर सारे समाजका स्वामित्व स्थापित करना होगा। सामूहिक रूपमें अधिकसे अधिक धनोत्पादन हो, इसके लिये रूसने एक आर्थिक योजना निश्चित की है, जिसके अनुसार कृषि, शिल्प-व्यवसाय आदि क्षेत्रोंमें कार्य हो रहा है और इस सामूहिक धनोत्पादनके कार्यमें प्रत्येक व्यक्तिको

मानव-सेवाके महामन्त्रसे दीक्षित करके काय करनेके लिये अनुप्राणित किया जा रहा है। सोवियट रूसमें जो राजर्न तिक विप्लव हुआ है, उसमें राष्ट्रका शासन वस्तुतः Government for the people अर्थात् जनताके लिये शासन कहा जा सकता है। अन्यान्य देशोंमें Government of the people and by the people अर्थात् जनताका शासन और जनता द्वारा शासन होनेपर भी वस्तुतः जनताके लिये शासन नहीं है; क्योंकि वहाकी जन-सभाओं और शासन-परिषदोंपर बड़े-वड़ जमीन्दारों और पूंजीपतियोंका आधिपत्य है और उन्हींके हितोंपर ध्यान रखकर देशका शासन होता है। इसके विपरीत सोवियट रूसमें राष्ट्र-शासनके ऊपर प्रकृत रूपमें जनताका--उस जनताका, जो खेतों, कल-कारखानों और खानोंमें काम करती है—आधिपत्य है। यह सर्वहारा दल ही वहांके शासनमें सर्वेसर्वा है। इस प्रकार धर्म, व्यवसाय और राजनीति, इन तीनों क्षेत्रोंमें क्रांति रूसके राज्यविप्लव द्वारा सम्पन्न हुई है।

रूसके राज्यविप्लवके प्रथम चार वर्षोंमें जब कि देशमें गृह-युद्ध और दुर्भिक्षका भीषण ताण्डव हो रहा था, संसारके विभिन्न राष्ट्रोंने यह धारणा कर ली थी कि रूसमें बोल्शेविक शासनका अन्त हो जायगा। इसके बाद संसारके बहुतसे राष्ट्रोंने जब सोवियट राष्ट्रकी जड़ मजबूत होते देखकर उसे मान लिया और राष्ट्रसङ्घके सदस्यके रूपमें उसे ग्रहण करके अपनी पंक्तिमें सम्मिलित कर लिया उस समय तक भी बहुतसे लोग यही समझते थे

कि रूसी साम्यवादका अन्त हो जायगा और उसकी पञ्चवार्षिक आर्थिक योजना असफल सिद्ध होगी। किन्तु यह सारी धारणाएं, अनुमान और भविष्यवाणियां असत्य सिद्ध हुईं और आज सोवियट रूसके कट्टरसे कट्टर शत्रु भी इस बातको स्वीकार करते हैं कि यहां कृषि, शिल्प और उद्योग-धन्धोंमें अभूतपूर्व उन्नति हुई है; नये नये स्कूल, कालेज, औद्योगिक विद्यालय, गवेषणागार और कल-कारखाने अधिकाधिक संख्यामें खुलते जा रहे हैं और बाल्टिक समुद्रसे लेकर प्रशान्त महासागर तक नये-नये नगरोंका निर्माण हो रहा है और अनुर्व्वर क्षेत्र शक्तिशाली बन रहे हैं। सामूहिक कृषि और शिल्प-प्रणाली द्वारा खाद्य-पदार्थ तथा तैयार माल प्रचुर परिमाणमें उत्पन्न हो रहे हैं और सैन्य-शक्तिमें आज वह प्रबलसे प्रबल शक्तिशाली राष्ट्रोंमें अन्यतम हो रहा है।

❁ हमारी अन्य पुस्तकें ❁

१	महापुरुषोंकी प्रेम कहानियां ...	१।)
२	महापुरुषोंकी करुण कहानियां ...	१।)
३	कलकत्तेकी काली रातें ...	१।)
४	अभिनेत्री की आत्म कथा ...	१)
५	अभिनेत्री जीवनके अनुभव ...	१।)
६	अलबेले एडीटर ...	।।।)